खरतरगच्छ सहस्राब्दी निर्णय

❊ देवलोक से दिव्य सान्निध्य ❊

प.पू. गुरुदेव श्री जम्बूविजयजी महाराज

❊ मार्गदर्शन ❊

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी

❊ संपादक ❊

भूषण शाह

❊ प्रकाशक/प्राप्ति स्थान ❊

मिशन जैनत्व जागरण

'जंबूवृक्ष' सी/504, श्री हरि अर्जुन सोसायटी,
चाणक्यपुरी ओवर ब्रिज के नीचे,
प्रभात चौंक के पास, घाटलोडीया
अहमदाबाद -380061

खरतरगच्छ का उद्भव

© संपादक एवं प्रकाशक
* प्रतियाँ : 2000
* मूल्य : 100 ₹
प्रकाशन वर्ष : वि.सं. 2075, नवम्बर, 2019.

* पत्र प्राप्त होने पर प्रस्तुत पुस्तक पू. साधु-साध्वी भगवंतों को भेंट स्वरूप भेजी जाएगी। * आवश्यकता न होने पर पुस्तक को प्रकाशक के पते पर वापस भेजने का कष्ट करें। * आप इसे Online भी पढ़ सकते हैं.... www.jaineliabrary.org. पर। * पुस्तक के विषय में आपके अभिप्राय अवश्य भेजें। * पोस्ट से या कोरियर से मंगवाने वाले प्रकाशक के एड्रेस से मंगवा सकते हैं।

नोट :- पुस्तक की आवश्यकता न होने पर पुनः
भेजे ताकी अन्य को पढन-पाठन में काम आए ।

ग्रंथ समर्पण

भगवती पद्मावती देवी के स्वमुख से सुनी हुई तपागच्छ के अभ्युदय सूचक भविष्यवाणी एवं तपागच्छ को भगवान महावीर की मूल पाट परंपरा पर अविच्छिन्न रुप से पांचवे आरे के अंत तक बिराजमान होने की बात को ध्यान में रखते हुए अपने सभी ग्रंथ एवं स्तोत्र गच्छवाद से उपर उठकर तपागच्छीय आ. सोमतिलकसूरिजी को सोंपने वाले उदारमना विविध तीर्थकल्पादि रचयिता, महोम्मद तुगलक प्रतिबोधक, मेरी आस्था एवं श्रद्धा के केन्द्र आ. जिनप्रभसूरिजी को प्रस्तुत पुष्प सादर समर्पित.

– भूषण

अनुक्रमणिका

क्र.		पृष्ठ.
1.	खरतर बिरुद पर विचार	7
2.	प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों के उल्लेख	11
3.	खरतरगच्छ के सहभावी रुद्रपल्लीय गच्छ एवं अन्य गच्छीय ग्रंथों के उल्लेख	12
4.	इतिहास विशेषज्ञों के उल्लेख	14
5.	12वीं शताब्दी के प्रक्षिप्त पाठ एवं जाली लेख!!!	15
6.	पुरातत्त्वाचार्य जिनविजयजी के उल्लेख	24
7.	'सं. 1080 में दुर्लभराजसभा' की कसौटी	29
8.	इतिहास में बढा एक और विसंवाद	30
9.	क्या जिनेश्वरसूरिजी और सूराचार्य मिले थे ?	30
10.	'खरतर' शब्द का अर्थ और बिरुद के रूप में विरोधाभास	32
11.	'खरतर' शब्द की प्रवृत्ति कब और किससे?	35
12.	उपाध्याय सुखसागरजी का उल्लेख!!!	36
13.	दुर्लभराजा का समय निर्णय	37
14.	प्रभावक चरित्र का उल्लेख	39
15.	'सम्यक्त्व सप्ततिका' की टीका का उल्लेख	45
16.	इतिहासप्रेमी ज्ञानसुन्दरजी म.सा. के ऐतिहासिक प्रमाणों से युक्त अभिप्राय	48
17.	निष्पक्ष इतिहासकार पं. कल्याणविजयजी का ऐतिहासिक उपसंहार	51
	परिशिष्ट-1 खरतरगच्छाधिपति आ. जिन मणिप्रभसूरिजी का पत्र	54
	परिशिष्ट-2 आचार्य श्री आ. जिनपियूषसागरसूरिजी का पत्र	55
	परिशिष्ट-3 खरतरगच्छाधिपति आ. जिनचंद्रसूरिजी का पत्र	59
	परिशिष्ट-4 गणाधीश पं. विनयकुशलमुनि का पत्र	60
	परिशिष्ट-5 ललितजी नाहटा का पत्र (जिनेश्वर वर्धमान अंक)	68
	परिशिष्ट-6 पद्मचंद नाहटा का उल्लेख	72
	परिशिष्ट-7 बीकानेर संघ का पत्र	73
	परिशिष्ट-8 तीर्थंकर मूर्तियों पर जाली लेख का सत्य - मु ज्ञानसुंदरजी म.सा.	74

भूमिका

वैसे तो यह युग चर्चा का नहीं है.... न ही हम इन चर्चा में पडना चाहते थे... लेकिन पीछले कुछ वर्षो से खरतरगच्छ की स्थापना विषयक मतभेद खरतरगच्छ के साधुओ में भी चल रहा है। स्थापना विषयक महत्वपूर्ण कुछ मत इस प्रकार है....

वि.सं. **1075** पू. आ. जिनमणिप्रभसूरिजी म. का. (बाद में **1078** किया)

वि.सं. **1080** पू. आ. जिनपियूषसागरसूरिजी म.सा. (जो खरतर परंपरागत है)

पुस्तक प्रकाशन की प्रेरणा :

इस विषय में सत्य जानने हेतु कुछ भवभीरु साधु साध्वीजी भगवंतो द्वारा प्रश्न मेरे सामने उपस्थित हुए.... इस विषय में मैने "इतिहास के आईने में अभयदेवसूरिजी का गच्छ" नामक मेरे लघुग्रंथ में लिखा ही था.... उसी का सारांश यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ। सत्यान्वेषी सुज्ञजनो को अत्यंत उपयोगी होगा यह मेरी भावना है। पुस्तक को पढकर सत्यासत्य का निर्णय करे...

आश्चर्य की है बात...

खरतरगच्छ सहस्राब्दी मनाने के लिए खरतरगच्छ में ही अलग-अलग मत होने से अब सहस्राब्दी महोत्सव **3** बार मनाया जाएगा **2075** में बीकानेर में खरतरगच्छाधिपति जिनचंद्रसूरि मना रहे है.. **2078** में खरतरगच्छाधिपति आ. जिनमणिप्रभसूरिजी मनाएंगे.. **2080** में खरतरगच्छाचार्य जिन पियूषसागरसूरिजी मनाएँगे और इस प्रकार खरतरगच्छ की सहस्राब्दी **3-3** बार मनाई जाएगी... हमारी भावना तो सभी में सम्मिलित होने की है। अगर भाविभाव रहा तो तीनों महोत्सव हम अवश्य देख पाएँगे।

हमारे द्वारा तो सिर्फ प्रत्युत्तर ही दिया जाता है...

कई लोग प्रश्न करते है (खास तो मेरे हृदय से निकट खरतरगच्छीय साधु-साध्वीजी भगवंत) की आप इस विखवाद में क्यो पडते हो.... अरे ! हम भला क्यों अपनो से विखवाद करेंगे ? खरतरगच्छ तो हमे उतना ही प्यारा है जितना तपागच्छ, हम भी दादा गुरुदेव को वंदन करते है.. परंतु यहाँ बात इतिहास एवं सत्य की है... हमने तो सिर्फ असत्य बातो का जवाब दिया है और जो गलत आक्षेप किये है उसका निवारण किया है... इसमें ना तो हमने कटु शब्दो का प्रयोग किया है ना ही गच्छ द्वेष से लेखन... हमारा मत सिर्फ यह है कि इस समय में हम सब गच्छवाद में न पडकर शासन को लक्ष में रखकर आगे बढे और अगर इस विषय में लिखना ही हो तो सत्य ही लिखा जाए ताकि भावी पेढी के समक्ष तो सत्य इतिहास को प्रस्तुत कर सकें....

चर्चा शुरु कौन करता है ?

हमने आज तक कभी चर्चा शुरु नहीं की..... चर्चा शुरु हंमेशा सामने से होती है... जैसे "जैनम् टुडे" के आर्टिकल, ''सच्चाई छुपने में सावधान ?'' पुस्तक इत्यादि प्रथम ही प्रकाशित हुए है.... हमने तो सिर्फ गुरुभगवंतो की आज्ञा से जवाब दिया है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है की कहीं हमने गच्छ द्वेष से लिखा। हमारे मन में खरतरगच्छ के प्रति विशिष्ट आदरभाव है और हंमेंशा रहेगा। लेकिन इतिहास द्रोह का जवाब तो अवश्य ही दिया जाएगा। तपागच्छ और खरतरगच्छ जिनशासन के ही अंग है... जिनशासन से अलग नहीं है....

विचारणीय प्रश्न :

खरतरगच्छ के आचार्य जिनमणिप्रभसूरिजी म. द्वारा सर्वप्रथम बिना कीसी आधार के उनके आचार्य पद की पत्रीका में सं 2075 छपवाया गया था। जिसको लेकर खरतरगच्छ में भारी विरोध हुआ था। जिसके अनेक प्रमाण परिशिष्ट में है लेकीन बाद में इन्दौर चातुर्मास सं. 2074 में आपने सहस्राब्दी 2078 में मनाने का निर्णय लीया... फीर भी सर्व गच्छीय अतिप्राचिन श्री अवन्ति पार्श्वनाथ तीर्थ में नइ प्रतिमा न बिठाने के अपने वचन से पलटते हुए जो नई प्रतिमा बिठाई उसमें सं 2075 खरतरगच्छ सहस्राब्दी गौरव वर्ष लीख दीया है। समाज व इतीहास के साथ यह सबसे बडा धोखा है। इसका सप्रमाण विवेचन अलग से पुस्तक में दीया जाएगा।

सत्य क्या है ? :

खरतरगच्छ परंपरा के स्थापना बिषयक सं. 1080 के मत से भिन्न 1075 और 1078 के दो मत हाल ही मे निकले है। परंतु सत्य तो यह है की खरतरगच्छ की स्थापना सं 1205 में हुई थी जिसके अनेक प्रमाण है... प्रस्तुत पुस्तक में भी इसी विषयक कई प्रमाण दीए गए है और उक्त प्रमाणो से यह सिद्ध होता है की खरतरगच्छ की स्थापना सं 1205 में हुई थी और यह निर्णय पर पहुंचा जाता है की खरतरगच्छ सहस्राब्दी वर्ष सं 2205 में आएगा। शायद सत्य को स्वीकार करने वाले तत्कालिन खरतरगच्छीय साधु-साध्वीजी भववंत सं 2205 में फीर से सहस्राब्दी मनाऐंगे ... इस तरीके से 4 - 4 बार सहस्राब्दी मनाने वाला खरतरगच्छ सर्वप्रथम गच्छ होगा।

खरतरगच्छाधिपति श्री जिनमणिप्रभसूरिजी म.सा. ने अपने आचार्य पदारोहण महोत्सव में तिथि विषयक एकता की बात कही थी... "तपागच्छ के दो पक्ष (एक तिथि और दो तिथि) अगर एक हो जाए तो हम भी उसमें शामिल हो जाएंगे।"

आपके उदारभाव को नमन करता हूँ। आपकी भावना देखकर मुझे महोम्मद तुगलक प्रतिबोधक आ जिनप्रभसूरिजी की याद आ गई जिन्होने गच्छराग को छोडकर शासन हितमें अपना सभी बहुमूल्य साहित्य तपागच्छ को सौंप दिया इसी प्रकार की आशा हम आपसे भी रखते है की आपने जो वचन दीया है उसे निभाते हुए तपागाच्छ से एकता कर लें. कहते है Charity Begains at home इसी तर्ज पर आपसे खास बिनती है कि सर्व प्रथम खरतरगच्छ में एकता स्थापित करलें वो जब हो जाए तब तपागच्छ के किसी भी हिस्से से एकता कर लीजिए... भविष्य में आपके उदार भाव को देखकर तपागच्छ के "दो भाई" भी एक हो जाएँगे।

आपकी भावना जल्दी सफल हो और तपागच्छ-खरतरगच्छ यहाँ तक सकल श्री संघ एक होकर पूरे विश्व में जिनशासन की ध्वजा पताका लहरावें इसी मंगलकामना के साथ....

शासन रक्षा एवं गच्छ रक्षा के सभी कार्यो में सदा सहयोग करने के लीए तपागच्छीय प्रवर समिति के सभी आचार्य भगवंतो का एवं गच्छाधिपति आ.भ.पुण्यपालसूरिजी महाराजा का में सदा ऋणी हूं।

कीसी को भी दुःख लगा हो तो मिच्छामी दुक्कडम्।

- भूषण शाह

खरतर बिरुद पर विचार

जिनेश्वरसूरिजी प्रकाण्ड विद्वान्, विशुद्ध चारित्री तथा प्रभावक आचार्य थे। इसमें कोई मतभेद नहीं है, परंतु वि. सं. 1080 में आ. जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद मिलने की बात उचित प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि अगर ऐसा होता तो वे अपने ग्रन्थों में खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख करते। उन्होंने सं. 1080 में ही जालोर में '**अष्टक प्रकरण**' की टीका लिखी थी एवं सं. 1108 में '**कथाकोश–प्रकरण**' की रचना की थी। इस बीच में उन्होंने '**पञ्चलिङ्गी प्रकरण**', '**वीर चरित्र**', '**निर्वाण लीलावती**', '**षट्स्थानक प्रकरण**', '**चैत्यवंदन विवरण**' आदि ग्रंथों की भी रचना की थी। परन्तु उन्होंने कहीं पर भी खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है।

मान लिया कि आ. श्री जिनेश्वरसूरिजी परमसंवेगी एवं निस्पृहशिरोमणि थे, अतः उन्होंने अपने ग्रंथों में उक्त घटना का उल्लेख नहीं किया हो। **परंतु जिस तरह आ. जगच्चंद्रसूरिजी को 'तपा' बिरुद मिला था' ऐसा उक्त घटना के साक्षी, उनके ही शिष्य आ. देवेन्द्रसूरिजी ने कर्मग्रंथ की प्रशस्ति में अपने गुरुदेव की स्तुति करते हुए उल्लेख किया है एवं उक्त घटना के लिए सभी एकमत हैं।**[*1]

उसी तरह वि. सं. 1080 में **आ. जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिलने की घटना बनी होती तो उनके शिष्य–प्रशिष्य भी उनका उल्लेख अवश्य करते।** खुद की प्रशंसा के समय मौन रहना उचित है, परंतु गुरु भगवंत के गुणगान के समय में

---

*1 **क्रमात् प्राप्ततपाचार्येत्यभिख्या भिक्षुनायकाः।**
(अ) **समभूवन् कुले चान्द्रे श्री जगच्चंद्रसूरयः ॥**
– आ. देवेन्द्रसूरिकृत स्वोपज्ञ कर्मग्रंथ टीका-प्रशस्ति

मणिरत्नगरोः शिष्याः श्री जगच्चंद्रसूरयः।
सिद्धान्तवाचनोद्भूतवैराग्यरसवार्द्धयः ॥
चारित्रमुपसंपद्य यावज्जीवमभिग्रहात्।
आचामाम्लतपस्तेनुस्तपागच्छस्ततोऽभवत् ॥
– आ. गुणरत्नसूरिजी कृत क्रियारत्न समुच्य-प्रशस्ति

ब) खरतरगच्छ के आ. जिनपीयूषसागरसूरिजी ने भी '**कमजोर कड़ी कौन?**' पृ. 133 पर लिखा है–'जगच्चन्द्रसूरि–आपकी कठोर तपश्चर्या से मुग्ध बन चित्तौड़ के महाराणा ने 'तपा' बिरुद दिया, जिससे बड़गच्छ का नाम तपागच्छ हुआ।'

स) तत्र तेषां श्री तपागच्छालङ्कारभूताः श्री देवेन्द्रसूरयो मीलिताः।
– अंचलगच्छ बृहत् पट्टावली, महेन्द्रसूरि अधिकार

निस्पृहता से प्रेरित होकर मौन रहने का अवसर नहीं होता। **जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य-प्रशिष्य ने भी अपने ग्रंथों में उनके भरपूर गुणगान किये ही हैं, परंतु कहीं पर भी खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख किया हो ऐसा नहीं मिलता।** जैसे कि-

1. जिनेश्वरसूरिजी के गुरुभ्राता **बुद्धिसागरसूरिजी ने सं.** 1080 में जालोर में **'पञ्चग्रंथी'** ग्रंथ की रचना की। उसमें अपने गुरुभाई की भरपूर प्रशंसा की है, परंतु 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का निर्देश नहीं किया है।
2. जिनेश्वरसूरिजी के प्रधान शिष्य **धनेश्वरसूरिजी अपर नाम जिनभद्राचार्यजी** सं. 1095 में **'सुरसुंदरी चरित्र'** की रचना की। उसमें खरतर बिरुद की बात नहीं है।
3. आ. श्री **जिनचंद्रसूरिजी कृत 'संवेगरंगशाला'** में,
4. नवाङ्गी टीकाकार **श्री अभयदेवसूरिजी कृत टीका ग्रंथों** में तथा
5. सं. 1164 में **श्री जिनवल्लभगणिकृत 'अष्ट सप्ततिका'** आदि में खरतर बिरुद की बात नहीं है।
6. **आ.श्री जिनदत्तसूरिजी** ने **'गणधर सार्द्धशतक'** में श्री हरिभद्रसूरिजी की स्तुति में 8 श्लोक लिखे हैं एवं हरिभद्रसूरिजी चैत्यवासी नहीं थे, उसका खुलासा भी किया है, जबकि श्री जिनेश्वरसूरिजी के लिए 13 श्लोक लिखे परंतु **खरतर बिरुद प्राप्ति की बात नहीं लिखी है।**

* इतना ही नहीं, गणधर सार्द्धशतक के ऊपर **कनकचन्द्र गणिजी** ने सं. **1295 में टीका लिखी** थी, उसी के आधार से सं. 1676 में **पद्ममन्दिर गणिजी** ने भी संक्षेप से टीका रची[*1], उसमें भी **'खरतर' बिरुद की बात नहीं है।**
* तथा इतिहासवेत्ता **पं. कल्याणविजयजी** ने **'पट्टावली पराग'** में हस्तलिखित प्रत के आधार से बताया है कि सर्वराजगणिजी की

---

*1. श्रीमज्जिनेश्वरगुरोरन्तेषदासीच्च कनकचन्द्रगणिः। शर-निधि-दिनकरवर्षे (1295), पूर्वं तेन कृता वृत्तिः।।1।। रस-जलधि-षोडशमिते (1676), वर्षे पोषस्य शुद्धसप्तम्याम्। श्री जिनचंद्रगणाधिप-राज्ये जेसलसुरधराध्रे।।2।।
तट्टीकादर्शादिह, संक्षिप्य च पद्ममन्दिरेणापि। लिलिखेऽनुग्रहबुद्धया, संक्षेपरुचिज्ञ-जनहेतोः।।6।।

‘**गणधर–सार्द्धशतक**’ की **लघुवृत्ति** तथा सुमतिगणिजी की ‘**बृहद्वृत्ति**’ **में भी ‘खरतर’ बिरुद की बात नहीं है।**

* **जिनविजयजी** संपादित ‘**कथाकोष प्रकरण**’ में **सर्वराजगणिजी** की **लघुवृत्ति** एवं **सुमतिगणिजी** की **बृहद्वृत्ति** के संदर्भ ग्रंथ दिये हैं, उनमें भी खरतर बिरुद की बात नहीं है।

* वर्तमान में बृहद्वृत्ति का ‘**प्राप्त खरतर बिरुद भगवन्तः श्री जिनेश्वरसूरयः**’ ऐसा पाठ दिया जाता है, तत्संबंधी स्पष्टीकरण के लिए देखें Ch-16.

7. **आ.श्री जिनपतिसूरिजी** ने भी ‘**सङ्घपट्टक**’ की **बृहद्वृत्ति** में खरतर बिरुद की बात नहीं लिखी है। बल्कि ‘सूरिःश्रीजिनवल्लभोऽजनि बुधश्चान्द्रे कुले।’ इस प्रकार ‘चान्द्रकुल’ का ही उल्लेख किया है। उसी तरह ‘**पंचलिंगी प्रकरण**’ की टीका में भी चान्द्रकुल ही लिखा है।

8. आ. श्री जिनपतिसूरिजी के शिष्य **श्री नेमिचंद्रसूरि कृत** ‘**षष्टि शतक**’ में ‘नंदउ विहिसमुदाओ’ लिखा है, ‘खरयरसमुदाओ’ नहीं लिखा है।

9. पू.आ.श्री अभयदेवसूरिजी के प्रशिष्य गुणचंद्रगणिजी जो बाद में आ. देवभद्रसूरिजी बने, उन्होंने सं. 1139 में ‘**महावीर चरियं,** सं. 1158 में ‘**कथारत्नकोश**’, एवं सं. 1168 में **पासनाहचरियं** की रचना की थी। उनकी प्रशस्ति में चान्द्रकुल ही लिखा है।

10. अभयदेवसूरिजी के पट्टधर **वर्धमानसूरिजी**[*1] ने सं. 1140 में ‘**मनोरमा कहा**’ एवं सं. 1160 में ‘**ऋषभदेव चरित्र**’ की रचना की थी। इसकी प्रशस्ति में भी ‘खरतर’ बिरुद का उल्लेख नहीं है, केवल चान्द्रकुल का ही उल्लेख किया है।

11. सं.1292 में, **जिनपालोपाध्यायजी** ने जिनेश्वरसूरिजी रचित ‘**षट्स्थानक प्रकरण**’ की टीका तथा सं. 1293 में **द्वादशकुलक की टीका** लिखी थी। उसकी प्रशस्ति में भी ‘खरतर’ बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है, परंतु चान्द्रकुल ही लिखा है।

---

*1. गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति एवं बृहद्गुर्वावली के अनुसार भी अभयदेवसूरिजी ने वर्धमानसूरिजी को अपनी पाट–परंपरा सौंपी थी। तथा जिनवल्लभगणिजी ने वर्धमानसूरिजी की प्रशंसा अष्टसप्ततिका के 49वें श्लोक में की है।

12.सं. 1294 में **पद्मप्रभसूरिजी** ने **'मुनिसुव्रत चरित्र'** की रचना की। उसकी प्रशस्ति में भी 'खरतर' बिरुद की बात नहीं है।

13.सं. 1305 में **जिनपालोपाध्यायजी** ने **खरतरगच्छालङ्कार गुर्वावली** लिखी थी। उसमें भी खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है। वह सिंधी प्रकाशनमाला से प्रकाशित हो चुकी है तथा **महोपाध्याय विनयसागरजी** ने उसका अनुवाद **'खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास'** में दिया है। उसमें भी खरतर बिरुद प्राप्ति की बात नहीं लिखी है। (प्रमाण के लिए Ch-16)

14.सं. 1328 में लक्ष्मीतिलक उपाध्यायजी ने प्रबोधमूर्ति गणिजी विरचित 'दुर्गपदप्रबोध' ग्रंथ पर वृत्ति लिखी। उसकी प्रशस्ति में 'चान्द्रकुलेऽजनि गुरुजिनवल्लभाख्यो' लिखा है। तथा **जिनदत्तसूरिजी से 'विधिपथ' सुख पूर्वक विस्तृत हुआ** ऐसा लिखा है। उसमें **'खरतर गच्छ' की तो कोई बात ही नहीं लिखी है।**

जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद नहीं मिला था!!! क्योंकि जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' विरुद होता तो उनके समय से उनका गच्छ 'खरतरगच्छ' के रूप में प्रसिद्ध होता! जब कि जिनदत्तसूरिजी से अथवा उनके बाद ही खरतरगच्छ की प्रसिद्धि मानी जाती है । देखिये :-

'खरतरगच्छ के विद्वानों का मन्तव्य''

1. ''आगे जिनवल्लभसूरि एवं जिनदत्तसूरि के समय यह परम्परा विधिमार्ग के नाम से जानी गयी और यही आगे चलकर खरतरगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई।''

-महो. विनयसागरजी

(खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास, खण्ड 1 पृ. 12)

2. ''जिनदत्तसूरिजी के समय विधिमार्ग 'खरतरगच्छ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

-मुनि मनितप्रभसागरजी म.सा.

(समस्या, समाधान और संतुष्टि, पृ. 192)

प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों के उल्लेख

1. **प्रभाचंद्रसूरिजी** द्वारा रचित **'प्रभावक चरित्र' (सं. 1334),** एक ऐतिहासिक ग्रंथ है, जिसे सभी गच्छ प्रामाणिक मानते हैं। उसमें दिये गये 'अभयदेवसूरि प्रबन्ध' में जिनेश्वरसूरिजी का भी वर्णन दिया है। उसमें उनका पाटण जाना तथा कुशलतापूर्वक वसतिवास वाले साधुओं के विहार की अनुमति प्राप्त करने का विस्तृत वर्णन भी दिया है, परंतु **उसमें न तो 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का उल्लेख है और न ही राजसभा में किसी वाद के होने का निर्देश है।** उसमें केवल सुविहित साधुओं के विहार की अनुमति प्राप्ति का ही उल्लेख है।

2. **सूरि पुरंदर हरिभद्रसूरिजी रचित 'सम्यक्त्व सप्ततिका' ग्रंथ की टीका रूद्रपल्लीय गच्छ के संघतिलकसूरिजी ने रची है।** उस ग्रंथ की 26वीं गाथा की टीका में प्रसंगोपात जिनेश्वरसूरिजी की कथा भी दी है। उसमें भी जिनेश्वरसूरिजी का पाटण जाना एवं सुविहित मुनिओं के विहार की अनुमति की बात लिखी है, **परंतु राजसभा में चैत्यवासिओं से वाद और 'खरतर' बिरुद की प्राप्ति का कोई निर्देश नहीं किया है।**

जिनविजयजी की दृष्टि में "प्रभावक चरित्र"

इसमें कोई शक नहीं कि प्रभाचंद्र एक बड़े समदर्शी, आग्रहशून्य, परिमितभाषी, इतिहासप्रिय, सत्यनिष्ठ और यथासाधन प्रमाणपुरःसर लिखने वाले प्रौढ प्रबन्धकार हैं। उन्होंने अपने इस सुन्दर ग्रंथ में जो कुछ भी जैन पूर्वाचार्यों का इतिहास संकलित किया है, वह बड़े महत्त्व की वस्तु है। इस ग्रंथ की तुलना करने वाले केवल जैन साहित्य-ही में नहीं अपितु समुच्चय संस्कृत साहित्य में भी एक-दो ही ग्रंथ हैं।

-कथाकोष प्रकरण, पृ. 21

खरतरगच्छ के सहभावी रुद्रपल्लीय गच्छ एवं अन्य गच्छीय ग्रंथों के उल्लेख

1. रुद्रपल्लीय गच्छ और वर्तमान खरतरगच्छ की पाट परंपरा जिनवल्लभगणिजी के बाद क्रमशः जिनशेखरसूरिजी एवं जिनदत्तसूरिजी से अलग होती है। अगर जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला होता तो जिनशेखरसूरिजी की शिष्य परंपरा भी अपनी उत्पत्ति खरतरगच्छ से बताती, परंतु ऐसा नहीं है। **रुद्रपल्लीय गच्छ** के (सं. 1468 में) **जयानन्दसूरिजी** ने '**आचार दिनकर**' की टीका की प्रशस्ति में चान्द्रकुल में हुए जिनशेखरसूरिजी से रुद्रपल्लीय गच्छ की उत्पत्ति बतायी है।

   इससे यह भी पता चलता है कि **सं. 1468 तक तो यह गच्छ खुद को चान्द्रकुल की ही एक शाखा मानता था, अर्थात् खरतरगच्छ की शाखा नहीं मानता था।** परंतु वर्तमान में इसे खरतरगच्छ की शाखा के रूप में गिनाया जाता है, जो उचित नहीं है।

   रुद्रपल्लीय गच्छ के उल्लेख से पता चलता है कि जिनेश्वरसूरिजी की शिष्य परंपरा खरतरगच्छ के रुप में प्रसिद्ध नहीं हुई, परंतु जिनदत्तसूरिजी की शिष्य परंपरा ही खरतरगच्छ के रूप में प्रसिद्ध हुई है।

2. **अंचलगच्छ** के '**शतपदी ग्रंथ**' में '**वेदाभ्रारुणकाले**' के द्वारा खरतरगच्छ की उत्पत्ति वि. सं. 1204 में बतायी है।

3. **तपागच्छ** की 51वीं पाट पर हुए आचार्य मुनिसुंदरसूरिजी ने **वि.सं. 1466** में '**गुर्वावली-विज्ञप्तिपत्र**' की रचना की थी, उसमें स्त्री-पूजा के निषेध को लेकर खरतरगच्छ की उत्पत्ति होना बताया है। खरतरगच्छ की यह मान्यता जिनदत्तसूरिजी से शुरु हुई थी। अतः यह स्पष्ट होता है कि **तपागच्छ के पूर्वाचार्य भी 'जिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति हुई'** ऐसा मानते थे, न कि जिनेश्वरसूरिजी से।

4. इसी तरह **तपागच्छ के हर्षभूषण गणिजी** ने सं. 1480 में '**श्राद्धविधि विनिश्चय**' की रचना की, उसमें भी '**वेदाभ्रारुणकाले**' पाठ के द्वारा खरतरगच्छ की उत्पत्ति वि. सं. 1204 में बतायी है।

5. सोमसुन्दरसूरिजी के शिष्य **जिनसुन्दरसूरिजी** ने वि.सं. **1483 में 'दीपालिका कल्प'** की रचना की थी। उसकी 129 वीं गाथा में खरतरगच्छ की उत्पत्ति वि.सं. 1204 में बतायी है। देखियें-

वत्सरैर्द्वादशशतैश्चतुर्भिरधिकैर्गतैः 1204।
भावी विक्रमतो गच्छः ख्यातः खरतराख्यया।।129।।

ये सभी ग्रंथ उपाध्याय धर्मसागरजी के भी 100-125 साल पहले के तपागच्छ के पूर्वाचार्यों के हैं।

6. राजगच्छपट्टावली एवं कडुआमत पट्टावली में भी 'वेदाभ्रारुणकाले' के द्वारा सं. 1204 में ही खरतरगच्छ की उत्पत्ति बताई है। - (विविधगच्छ पट्टावली संग्रह)

स्पष्टीकरण

15 वीं शताब्दी के आस-पास खरतरगच्छ के ग्रंथों में 'जिनेश्वरसूरिजी से खरतगरगच्छ की उत्त्पत्ति हुई', ऐसा प्रचार किया जाने लगा और यह मान्यता बहु-प्रचलित हो गयी थी। अपने पूर्वाचार्यों की खरतरगच्छ संबंधी धारणा का ख्याल न होने से उपरोक्त प्रचलित प्रघोष के अनुसार सं. 1511 में 'पं. सोमधर्मगणिजी', सं. 1517 में 'उपदेशसप्ततिका', आदि ग्रंथों में अभयदेवसूरिजी को खरतरगच्छीय मान लिया तो वह प्रमाण नहीं कहलाता है, क्योंकि उनके पूर्वाचार्यों ने सं. 1204 में ही खरतरगच्छ की उत्पत्ति बतायी है।

ऐसा ही आत्मारामजी म.सा. आदि के कथन के विषय में भी समझ सकते हैं। **जिनपीयूषसागरसूरिजी ने 'जैनम् टु-डे', अगस्त 2016, पृ. 15 में मुनिसुंदरसूिरिजी द्वारा 'उपदेश तरंगिणी' की रचना की गयी थी, ऐसा लिखा है जो उचित प्रतीत नहीं होता है** क्योंकि (जैन सत्य प्रकाश क्र. 139), 'जैन परंपरानो इतिहास' भाग-3, पृ. 164 के अनुसार सं. 1517 में रत्नमंदिरगणिजी ने **'उपदेशतरंगिणी'** की रचना की थी। **दुसरी बात कि उपदेश तरंगिणी में खरतरगच्छ या अभयदेवसूरिजी संबंधी कोई बात ही नहीं है।**

इतिहास विशेषज्ञों के उल्लेख...

1. इतिहासवेत्ता पं. कल्याणविजयजी ने अपने ऐतिहासिक संशोधनों का सार संक्षेप में इस प्रकार बताया है–

   आज तक हमने खरतरगच्छ से सम्बन्ध रखने वाले सेंकड़ों शिलालेखों तथा मूर्तिलेखों को पढ़ा है, परन्तु ऐसा एक भी लेख दृष्टिगोचर नहीं हुआ, जो विक्रम की 14वीं शती के पूर्व का हो और उसमें 'खरतर' अथवा 'खरतरगच्छ' नाम उत्कीर्ण हो, इससे जाना जाता है कि 'खरतर' यह शब्द पहले 'गच्छ' के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। (पट्टावली पराग – पृ. 354)

2. इसी प्रकार का अभिप्राय ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार से इतिहासप्रेमी ज्ञानसुंदरजी म.सा. ने भी व्यक्त किया है।

3. डॉ. बुलर ने भी सं. 1204 में जिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति मानी है।

4. **'खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह'** में **महोपाध्याय विनयसागरजी** ने 2760 लेखों का संग्रह दिया है, उनमें खरतरगच्छ के उल्लेख वाला सर्वप्रथम लेख 14वीं शताब्दी का ही है, उससे भी इतिहासवेत्ता पं. कल्याणविजयजी एवं ज्ञानसुंदरजी म.सा. की बात की पुष्टि होती है।

   महो विनयसागरजी ने भी **'दुर्लभराज ने जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद प्रदान किया हो अथवा नहीं किन्तु इतना तो सुनिश्चित है** कि.... (खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास' पृ. 12) इस उल्लेख के द्वारा **खरतर बिरुद की प्राप्ति में संदेह बताया है** तथा पृ. 13 पर **"अतः यह स्पष्ट है कि वर्धमान, जिनेश्वर, अभयदेव खरतरगच्छीय नहीं...."** के द्वारा **अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे, ऐसा स्वीकारा है।**

5. पुरातत्त्वाचार्य **जिनविजयजी** ने जिनेश्वरसूरिजी के खरतर बिरुद प्राप्ति का सर्वप्रथम उल्लेख जिस ग्रंथ में मिलता है ऐसे वृद्धाचार्य प्रबन्धावली ग्रंथ (15-16वीं शताब्दी का) को असंबद्ध प्रायः एवं अनैतिहासिक माना है और उसके आधार पर लिखी गयी परवर्ती पट्टावलियों को भी विशेष महत्त्व नहीं दिया है। (विशेष के लिये देखें Ch-6)

12वीं शताब्दी के प्रक्षिप्त पाठ एवं जाली लेख !!!

इस प्रकार हमने देखा कि–

1. जिनेश्वरसूरिजी से लेकर 200 साल तक के किसी भी ग्रंथ में खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं मिलता है।

2. इतना ही नहीं रुद्रपल्लीय गच्छ के किसी भी ग्रन्थ में जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिलने का उल्लेख नहीं किया है।

3. केवल जिनदत्तसूरिजी की शिष्य–परंपरा के अर्वाचीन ग्रंथों में ही खरतर बिरुद की बात मिलती है।

अतः 'जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला था', यह बात शंकास्पद बन जाती है। **अन्य गच्छों के प्राचीन 'शतपदी' आदि ग्रंथों में सं. 1204 से खरतरगच्छ की उत्पत्ति के उल्लेख से यह शंका और पुष्ट हो जाती है, क्योंकि 12वीं शताब्दी तक के किसी भी ग्रंथ में खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं मिलता है।**

'महावीर चरियं' के पाठ की समीक्षा

हाँ ! खरतरगच्छ के अनुयायियों के द्वारा जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद मिलने के प्राचीन प्रमाण के रूप में गुणचन्द्रगणिजी रचित **'महावीर चरियं'** (सं. 1139) की प्रशस्ति का यह श्लोक दिया जाता है–

'गुरुसाराओ धवलाओ', 'सुविहिआ' खरयसाहुसंतई जाया।
हिमवंताओ गंगव्व निग्गया सयलजणपुज्जा।।

–समयसुंदरगणिजी कृत सामाचारी शतक, पृ. 19, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई

परन्तु, इस श्लोक में **'खरय'** यह पाठ उचित नहीं लगता है, क्योंकि हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान भंडार, (वाडी पार्श्वनाथ भंडार) **पाटण की प्राचीन हस्तप्रत** (डा. 182 नं, 7030) में केवल **'सुविहिया साहुसंतई'**.... ऐसा ही पाठ है।

वास्तव में सुविहिया यह भी पाठांतर ही है, क्योंकि **अतिप्राचीन ताड़पत्रीय** ग्रंथ में **'निम्मल साहुसंतई'** ही लिखा है। (हेमचंद्राचार्य जैन ज्ञान भंडार, संघनो भंडार, पाटण, डा. 44 पो. 44)

उसकी प्रतिकृति यहाँ पर दी जा रही है।

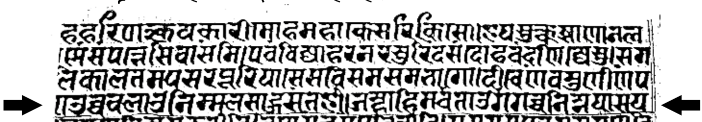

दूसरी बात, **'खरय' इन तीन अक्षरों को जोड़ने पर इस श्लोक में छंदोभंग का दोष भी लगता है,** क्योंकि प्रशस्ति के ये श्लोक **गाहा** छंद में बने हुए हैं। जो कि मात्रा छंद है। 'खरय' जोड़ने पर 3 मात्राएँ बढ़ जाती हैं, अतः छंद का भंग होता है।

तथा **'प्रवचन परीक्षा' जिसे हीरविजयसूरिजी एवं विजयसेनसूरिजी ने भी प्रमाणित किया था**[*1]**,** उसके अनुसार पता चलता है कि भूतकाल में भी महावीर चरियं का यह श्लोक प्रमाण के रूप में दिया गया था।

वह इस प्रकार था :-

'गुरुसाराओ धवलाउ खरयरी साहुसंतई जम्हा।
हिमवंताओ गंगुव्व निग्गया सयलजणपुज्जा।।'[*2]

परंतु वास्तव में यहाँ पर मूल में '**निम्मला**' शब्द था, जिसे बदलकर जैसलमेर की हस्तप्रत में '**खरयरी**' कर दिया गया था, ऐसा नारदपुरी '(नारलाई)' से प्राप्त **हस्तप्रत** के आधार से सिद्ध किया गया था। (प्रवचन परीक्षा प्रस्ताव 4, श्लोक 47-48, पृ. 288)

इस गाथा के अर्थ के निरीक्षण से भी 'निम्मला' शब्द ही उचित लगता है, क्योंकि इस गाथा का अर्थ यह है कि जैसे - **हिमवंत से गंगा निकली** उसी तरह बड़ी महिमावाले एवं शुद्ध चारित्री होने से जो गुरुसार एवं धवल हिमवंत के जैसे थे, ऐसे **जिनेश्वरसूरिजी से गंगा की तरह निर्मल साधु परंपरा निकली।**

यहाँ पर साहुसंतई को गंगा की उपमा के लिए निम्मला शब्द ही उपयुक्त है 'खरयरी' नहीं है, क्योंकि गंगा निर्मल कही जाती है, खरतरी नहीं कही जाती है।

अतः "**सुविहिआ खरय साहुसंतई**" और "**खरयरी साहुसंतई**" ये दोनों पाठ अशुद्ध एवं प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं।

पुण्यविजयजी की वेदना

इस तरह के प्रक्षिप्त पाठों के विषय में आगम प्रभाकर पू. पुण्यविजयजी म. ने भी कथारत्नकोश भा.-1 की प्रस्तावना में लिखा है कि-

---

*1 **देखें इसी ग्रंथ की प्रशस्ति** में तथा **विजय प्रशस्ति महाकाव्य,** सर्ग-10, श्लोक-4

*2 मूल श्लोक इस प्रकार है- **गुरुसाराओ धवलाउ निम्मला साहुसंतई जम्हा।**
हिमवंताओ गंगुव्व निग्गया सयलजणपुज्जा।।

'जो के जेलसमेरनी ताड़पत्रीय पार्श्वनाथ चरित्रनी प्रतिनी प्रशस्तिमा 'विउलाए वइरसाहाए' पाठने भूंसी नाखीने बदलामां 'खरयरो वरसाहाण' पाठ अने 'आयरियजिणेसरबुद्धिसागरायरियनामाणो' पाठने भूंसी नाखीने तेना स्थानमां 'आयरियजिणेसरबुद्धिसागरा खरयरा जाया' पाठ लखी नाखेलो मले छे; परंतु ए रीते भूंसी-बगाडीने नवा बनावेला पाठोने अमारी प्रस्तुत प्रस्तावनामां प्रमाण तरीके स्वीकार्या नथी। ऊपर जणाववामां आव्यु तेम ***जेसलमेरमां एवी घणी प्राचीन प्रतिओ छे जेमांनी प्रशस्ति अने पुष्पिकाओना पाठोने गच्छव्यामोहने अधीन थई बगाडीने ते ते ठेकाणे 'खरतर' शब्द लखी नाखवामां आव्यो छे, जे घणुं ज अनुचित कार्य छे'।***

आ.जिनपीयूषसागरसूरिजी के अप्रमाणिक प्रमाण!!

इसी प्रकार जिनपीयूषसागरसूरिजी ने 'खरतरगच्छ का उद्भव' नाम की पुस्तिका के पृ. 31 पर प्राचीन प्रमाण के रूप में देवभद्रसूरिजी रचित 'पासनाह चरियं' (सं. 1168) की प्रशस्ति में खरतर बिरुद का उल्लेख किया जाना बताया है। **उनकी यह बात स्पष्ट रूप से गलत सिद्ध होती है। क्योंकि उसकी प्रशस्ति में चान्द्रकुल का ही उल्लेख किया है, खरतर बिरुद की बात ही नहीं है। वह प्रशस्ति Ch-16 पर दी गयी है।**

इस तरह उक्त पुस्तिका में सं. 1147 का खरतरगच्छ की प्राचीनता की सिद्धि करने वाला लेख दिया है एवं अन्य प्राचीन लेखों के प्रमाण दिये हैं। **वे सब कब के जाली सिद्ध हो चुके हैं। पता नहीं क्यों उन्हीं पुरानी बातों को लेकर अपने मत की सिद्धि करने का प्रयास किया जाता है?**

धन्यवाद तो साहित्य वाचस्पति महोपाध्याय विनयसागरजी को है, जिन्होंने उन लेखों को खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास में अप्रामाणिक माना है एवं खरतरगच्छ प्रतिष्ठालेख संग्रह में उन्हें स्थान नहीं दिया है।

जिनपीयूषसागरसूरिजी का लेख इस प्रकार है:-

यह उल्लेख संवत् 1139 में बने हुए श्री वीर चरित्र में है, यह रचना नवांगी वृत्तिकार खरतरगच्छीय श्री अभयदेवसूरिजी के सन्तानीय श्री गुणचन्द्रगणिजी ने की है। अन्य गच्छीय पट्टावलियों में जो बहुत ही अर्वाचीन है उनमें खरतरगच्छ की उत्पत्ति सं. 1204 में होना लिखा है, यह मत सरासर भ्रामक व वास्तविकता से परे है। **जैसलमेर दुर्ग में**

पार्श्वनाथ मंदिर में प्राप्त शिलालेख जो सं. 1147 का है, उसमें स्पष्ट लिखा है **'खरतरगच्छ जिनशेखरसूरिभिः।'**

सं. 1188 में रचित देवभद्रसूरिकृत पार्श्वनाथ चरित्र की प्रशस्ति में 1170 में लिखित पट्टावली में 'खरतर विरुद' मिलने का स्पष्ट उल्लेख है।

जैतारण राजस्थान के धर्मनाथ स्वामी के मंदिर में सं. 1171 माघ सुदी पंचमी का सं. 1169. सं. 1174 के अभिलेखों में स्पष्ट लिखा है-'खरतरगच्छे सुविहिता गणाधीश्वर जिनदत्तसूरि।

भीनासर (बीकानेर) के पार्श्वनाथ के मंदिर में पाषाण प्रतिमा पर सं. 1181 का लेख अंकित है, उसमें भी 'खरतरगणाधीश्वर श्री जिनदत्तसूरिभिः' लिखा है। (खरतरगच्छ का उद्भव पृ. 31-32)

लेख की समीक्षा

1. जिनपीयूषसागरसूरिजी ने **महावीर चरियं** की जो बात लिखी है **उसका स्पष्टीकरण** आगे Ch-5 पर किया जा चुका है।
2. **जैसलमेर दुर्ग** के सं. 1147 वाले लेख तथा **भीनासर (बीकानेर)** के सं. 1181 वाले लेख का स्पष्टीकरण **ज्ञानसुंदरजी म.सा. के शब्दों में** इस प्रकार हैः-

खरतर शब्द को प्राचीन साबित करने वाला एक प्रमाण खरतरों को ऐसा उपलब्ध हुआ है कि जिस पर वे लोग विश्वासकर कहते हैं कि बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर के संग्रह किये हुए शिलालेख खण्ड तीसरे में वि. सं. 1147 का एक शिलालेख है।

ङ्सं. 1147 वर्षे श्रीऋषभ बिंबं श्रीखरतर गच्छे श्री जिनशेखर सूरिभिः कारापितं।।'

-बा. पू. सं. खं. तीसरा लेखांक 2124

पूर्वोक्त शिलालेख जैसलमेर के किल्ले के अन्दर स्थित चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मंदिर में है। जो विनपबासन भूमि पर बीस विहरमान तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ स्थापित है, उनमें एक मूर्ति में यह लेख बताया जाता है। परन्तु जब फलोदी के वैद्य मुहता पांचूलालजी के संघ में मुझे जैसलमेर जाने का सौभाग्य मिला तो, मैं अपने दिल की

__शङ्का निवारणार्थ प्राचीन लेख संग्रह खण्ड तीसरा जिसमें निर्दिष्ट लेख__ मुद्रित था साथ में लेकर मन्दिर में गया और खोज करनी शुरु की। परन्तु अत्यधिक अन्वेषण करने पर भी 1147 के संवत् वाली उक्त मूर्ति उपलब्ध नहीं हुई। अनन्तर शिलालेख के नम्बरों से मिलान किया, पर न तो वह मूर्ति ही मिली और न उस मूर्ति का कोई रिक्त स्थान मिला (शायद यहाँ से मूर्ति उठाली गई हो) पुनः इस खोज के लिये मैंने यतिवर्य प्रतापरत्नजी नाडोल वाले और मेघराजजी मुनौत फलोदीवालों को बुलाके जाँच कराई, अनन्तर अन्य स्थानों की मूर्तियों की तलाश की पर प्रस्तुत मूर्ति कहीं पर भी नहीं मिली। __शिलालेख संग्रह नम्बर 2120 से क्रमशः 2137 तक की सारी मूर्तिएँ सोलहवीं शताब्दी की हैं। फिर उनके बीच 2124 नम्बर की मूर्ति वि. सं. 1147 की कैसे मानी जाय ?__ क्योंकि न तो इस सम्वत् की मूर्ति हीं वहाँ है और न उसके लिए कोई स्थान खाली है। जैसलमेर में प्रायः 6000 मूर्तियाँ बताते हैं, पर किसी शिलालेख में बारहवीं सदी में खरतरगच्छ का नाम नहीं है। __अतः 1147 वाला लेख कल्पित है फिर भी लेख छपाने वालों ने इतना ध्यान भी नहीं रखा कि शिलालेख के समय के साथ जिनशेखरसूरि का अस्तित्व था या नहीं ?__

अस्तु ! अब हम जिनशेखरसूरि का समय देखते हैं तो वह वि. सं. 1147 तक तो सूरि–आचार्य ही नहीं हुए थे, क्योकि जिनवल्लभसूरि का देहान्त वि. सं. 1167 में हुआ, तत्पश्चात् उनके पट्टधर सं. 1169 में जिनदत्त और __1205 में जिनशेखर आचार्य हुए तो फिर 1147 सं. में जिनशेखरसूरि का अस्तित्व कैसे सिद्ध हो सकता है ?__

__खरतर शब्द खास कर जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण ही पैदा हुआ था, और जिनशेखरसूरि और जिनदत्तसूरि के परस्पर में खूब क्लेश चलता था। ऐसी स्थिति में जिनशेखरसूरि खरतर शब्द को गच्छ में मान ले या लिख दे वह सर्वथा असम्भव है।__ उन्होंने तो अपने गच्छ का नाम ही रुद्रपाली गच्छ रखा था। इस विषय में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी का उल्लेख हम ऊपर लिख आए हैं। अतः इस लेख के लिए अब हम दावे के साथ यह निःशंकतया कह सकते हैं कि उक्त 1147 संवत् का शिलालेख किसी खरतराऽनुयायी ने जाली (कल्पित) छपा दिया है। __नहीं तो यदि खरतर भाई आज भी उस मूर्ति का दर्शन करवा दें__ तो इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है।

__भला ! यह समझ में नहीं आता है कि खरतरलोग खरतर शब्द को प्राचीन बनाने__

में इतना आकाश पाताल एक न कर यदि अर्वाचीन ही मान लें तो क्या हर्ज है?

जिनदत्तसूरि के पहिले खरतर शब्द इनके किन्हीं आचार्यों ने नहीं माना था। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का शिलालेख हम पूर्व लिख आये हैं। वहाँ तक तो खरतर गच्छ मंडन जिनदत्त सूरि को ही लिखा मिलता है इतना ही क्यों पर उसी खण्ड के लेखांक 2385 में तो जिनदत्तसूरिजी को 'खरतरगच्छावतंस' भी लिखा है, ***अतः खरतरमत के आदिपुरुष जिनदत्तसूरिजी ही थे।***

**** श्रीमान् अगरचंदजी नाहटा बीकानेर वालों द्वारा मालूम हुआ कि वि. सं. 1147 वाली मूर्ति पर का लेख दब गया है। अहा–क्या बात है–आठ सौ वर्षों का लेख लेते समय तक तो स्पष्ट बचता या बाद केवल 3–4 वर्षों में ही दब गया, यह आश्चर्य की बात है। नाहटाजी ने भीनासर में भी वि. सं. 1181 की मूर्ति*** *पर शिलालेख में 'खरतरगच्छ' का नाम बतलाया है। इसी का शोध के लिये एक आदमी भेजा गया, पर वह लेख स्पष्ट नहीं बचता है, केवल अनुमान से ही 1181 नाम लिया है।*

(ज्ञानसुन्दरजी म.सा.–खरतरमतोत्पत्ति भा–1, पृ. 21–22–23)

3. **इसी तरह जैतारण आदि के लेख के विषय में भी यही बात है।**

''खरतरगच्छ का उद्भव'' पुस्तिका में प्रेस संबंधित भरपूर अशुद्धियाँ हैं, उसमें संवत् भी ठीक नहीं छपे हैं। जैसे कि सं. 1188 में देवभद्रसूरिजी रचित 'पार्श्वनाथ चरित्र' ऐसा लिखा है, परन्तु वास्तव में सं. 1168 में यह ग्रंथ रचा गया था।

जैतारण के जिन लेखों की बात वहाँ पर की गयी है, वे लेख इस प्रकार हैं–

1. 'सं. 1171 माघ शुक्ल 5 गुरौ सं. हेमराजभार्यहेमादे पु. सा. रूपचंद रामचन्द्र श्री पार्श्वनाथ बिंब करापितं अ. खरतरगच्छे सुविहित गणाधीश श्री जिनदत्तसूरिभिः।'
2. 'सं. 1174 वैशाख शुक्ला 3 सं. म.... भार्यहेमादें पु. ... चन्द्रप्रभ बिम्ब.... प्र. खरतरगच्छे सुविहित गणाधीश्वर श्री जिनदत्तसूरिभिः'
3. 'सं. 1181 माघ शुक्ल 5 गुरौ प्राग्वट ज्ञातिय सं. दीपचन्द्र भार्य दीपादें पु. अबीरचंद्र अमीरचंद्र श्री शान्तिनाथ बिंब करापितं प्र. खरतरगच्छे सुविहित गणाधीश्वर श्री जिनदत्तसूरिभिः'
4. 'सं. 1167 जेठ वदी 5 गुरौ स. रेनुलाल भार्य रत्नादें पु. सा. कुनणमल श्री चन्द्रप्रभ बिंब करापित प्र. सुविहित खरतर गच्छे गणाधीश्वर श्री

जिनदत्तसूरिभिः'

उपरोक्त शिलालेखों में चतुर्थ शिलालेख 1167 का है। जिनदत्तसूरिजी को सूरि पद वि. सं. 1169 में मिला था। उसके पूर्व जिनदत्तसूरिजी का नाम सोमचंद्र था। **जब 'जिनदत्तसूरि' इस नाम की प्राप्ति ही उन्हें सं. 1169 में हुई थी, तो सं. 1167 के शिलालेख में जिनदत्तसूरिभिः ऐसा उल्लेख आ ही कैसे सकता है?**

जिनदत्तसूरिजी ने जिस तरह जिनबिंबों की प्रतिष्ठा की थी, उसी तरह उन्होंने कई ग्रंथों की रचना भी की थी। मूर्तियों के नीचे 2-3 पंक्ति के शिलालेख में खरतरगच्छीय सुविहित गणाधीश्वर इत्यादि विशेषण लिखे जा सकते थे, तो उनके ग्रंथों की लम्बी प्रशस्तिओं में 'खरतर' शब्द की गन्ध तक भी क्यों नहीं मिलती है? यह बड़े आश्चर्य की बात है!! अतः उपर के सभी लेख अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं।

महो.विनयसागरजी का स्पष्ट बयान !!!

दूसरी बात इनकी लिपी भी परवर्तीकालीन है, ऐसा महोपाध्याय विनयसागरजी ने भी स्वीकारा है।

महोपाध्याय विनयसागरजी ने **'खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास' खण्ड-1 पृ.** 53 पर इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया है-

स्व. श्री भंवरलालजी नाहटा के मतानुसार महावीर स्वामी का मंदिर, डागों की गवाड़, बीकानेर में वि. सं. 1176 मार्गसिर वदि 6 का एक लेख है। यह लेख एक परिकर पर उत्कीर्ण है। इसमें जांगलकूप दुर्ग नगर में विधि चैत्य-महावीर चैत्य का उल्लेख है। इसी वर्ष, माह और तिथियुक्त एक अन्य अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर में संरक्षित एक प्रतिमा के परिकर पर उत्कीर्ण है। इन दोनों लेखों में ''वीरचैत्ये विधौ'' और 'विधि कारिते' शब्द से ऐसा लगता है कि ये जिनदत्तसूरि द्वारा ही प्रतिष्ठापित रहे हैं।

कुछ ऐसी भी जिन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जिन पर स्पष्ट रूप से **''प्रतिष्ठितं खरतरगणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः''** ऐसा शब्द उत्कीर्ण है। **इसकी लिपि परवर्तीकालीन है। दूसरे इस समय तक खरतरगच्छ शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ था, अतः ये लेख अप्रमाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं है।** (बीकानेर जैन लेख संग्रह, लेखांक 2183)

इस प्रकार महो.विनयसागरजी ने स्पष्ट शब्दों में स्पष्टीकरण किया है कि - ''उस समय तक खरतरगच्छ शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ था।''

लालचन्द्र भगवानदास गांधीजी की कपोल कल्पना

इस प्रकार महोपाध्याय विनयसागरजी भी **'खरतर' शब्द की प्रसिद्धि जिनदत्तसूरिजी के समय तक नहीं हुई थी, बाद में हुई थी,** ऐसा स्वीकारते हैं। **परंतु कुछ अनुरागी जन खरतर बिरुद को प्राचीन सिद्ध करने हेतु 'खर' ये अक्षर जहाँ पर भी दिख जावे इसे 'खरतर' बिरुद का सूचक मानने को तैयार हो जाते हैं।** ऐसा ही जिनपीयूषसागरसूरिजी की पुस्तिका 'खरतरगच्छ का उद्भव' में पृ. 5 पर दिये गये पं. लालचन्द्र भगवानदास गांधी के लेख में दिखता है। वह लेख जिनदत्तसूरिजी रचित **'कालस्वरूपकुलक' की 25वीं गाथा** संबंधी है। उसमें

''तुम्हह इहु पहुं चाहिलि दंसिउ हियइ बहुत्तु खरउ वीमंसिउ।''

इस वाक्य को **'खरतर'** बिरुद का सूचक माना है।

उनका लेख इस प्रकार है–

''उपर्युक्तायामेव गाथायां 'बहुत्तु खरउ' पदं प्रयुज्य ग्रन्थकर्त्रा निजाभिमतस्य विधिपथस्य 'खरतर' इति गच्छसंज्ञा ध्वनिता वितर्क्यते। विधिपथस्यैव तस्य कालक्रमेण प्रचलिता 'खरतरगच्छ' इत्यभिधाऽद्यावधि विद्यते।''

इसमें 'विधिपथस्यैव.....' के द्वारा भी स्पष्ट होता है कि **उस समय में जिनदत्तसूरिजी का गच्छ विधिपथ के रूप में प्रसिद्ध था** एवं बाद में उसकी खरतरगच्छ के नाम से प्रसिद्धि हुई।

'खरउ' से खरतरगच्छ के सूचित होने की बात का निराकरण इस ग्रंथ की टीका से ही हो जाता है। टीका का पाठ इस प्रकार है।

तुम्हह इहु पहु चाहिलि दंसिउ, हियइ बहुत्तु खरउ वीमंसिउ।
इत्थु करेज्जहु तुम्हि सयायरु, लीलइ जिव तरेहु भवसायरु।।25।।

(युष्माकमेष पन्थाश्चाहिलेन दर्शितो, हृदये प्रभूतं खरं विमर्श्य (मर्शितः)।
अत्र कुर्यात यूयं सदाऽऽदरं, लीलया यथा तरथ भवसागरम् ।।25।।)

व्या. युष्माकं यशोदेवाभू–आसिग–सम्भवानां एष पन्थाश्चाहिलेन युष्मत्पित्रा दर्शितः। अथ च चाहिलिकोऽर्थो वीक्ष्य सन्मार्गपरीक्षणेन हृदये **बहु प्रभूतं खरमत्यर्थं विमर्श्य अत्र सन्मार्गे कुर्यात** यूयं सदा सर्वदा आदरं प्रयत्नं लीलया यथा तरथ भवसागरम्। किलाणहिलपाटकपत्तने चाहिलनामा श्रावको धर्मार्थी विचारचातुरीचञ्चुरभूत्। तस्य च चत्वारः पुत्रा बभूवुः। तद्यथा–**यशोदेवः,** अद्भुत **आभू** इति प्रसिद्धः, **आसिगः, सम्भवश्चेति।** तेन च चाहिलेन धर्म–गुरुपरीक्षा–

परायणेन प्रभुश्री जिनदत्तसूरयो धर्म्माचार्यतया प्रतिपन्नाः। ते च तत्पुत्राः पित्राज्ञारता अपि धर्मज्ञा अपि कालदोषात् युतभावं कर्तुमीषुः। स च चाहिलस्तथा गुणमनीक्षमाणः पुत्राणां शिक्षाप्रदिदापयिषया तथाविधस्वरूपगर्भां विज्ञप्तिकां प्रभुश्रीजिनदत्तसूरीणां प्रेषयामास। ततस्तैरपि करुणासुधासमुद्रैस्तेषामुप-चिकीर्षया एवंविधधर्मदेशनागर्भः प्रतिलेखः प्रेषितः। ततस्ते एतदनुसारेण प्रवर्त्तमाना विविधमानृधुः, विधिधर्मं चाराधयामासुरिति।।25।।

इसमें '**खरउ वीमंसिउ**' का अर्थ-'**खरमत्यर्थं विमर्श्य...**' इस प्रकार किया है। एवं श्लोक का भावार्थ यह है कि चाहिल नाम के व्यक्ति को चार पुत्र थे, वे काल के दोष से सद्धर्म से भ्रष्ट हो गये थे, अतः उन्हें प्रतिबोध करने हेतु जिनदत्तसूरिजी को विज्ञप्ति भेजी थी। उसके जवाब के रूप में जिनदत्तसूरिजी ने यह उपदेशात्मककुलक उन पुत्रों को भेजा था। इसमें अंत में यह उपदेश दिया कि आपके पिता चाहिल ने जो मार्ग बताया है, उसके **विषय में खूब विचार करके सन्मार्ग में सदा प्रवृत्त** रहना। इस प्रकार यहाँ पर **'खरउ वीमंसिउ' के द्वारा उन पुत्रों को खूब विचार करने की बात कही थी तो उसमें 'खरउ' से खरतरगच्छ का सूचित होना कैसे माना जा सकता है?**

टीका प्रशस्ति

सूरप्रभोऽभिषेकः श्रीजिनपतिसूरिपदकमलभृङ्गः।
व्यावृत द्वात्रिंशतमल्पमेधसां किमपि बोधाय।।1।।
कालस्वरूपकुलकं व्याख्याय यदर्जितं मया पुण्यम्।
तेनास्तु भव्यलोकः सकलोऽपि विधिप्रबोधरतः।।2।।

इस प्रशस्ति में भी सूरप्रभ उपाध्याय ने 'विधिप्रबोधरतः' के द्वारा अपने गच्छ को विधिगच्छ के रूप में बताया है।

इस प्रकार हमने देखा कि **खरतरगच्छ के अनुयायियों के द्वारा 'खरतर' बिरुद प्राप्ति विषयक दिये जाने वाले प्राचीन प्रमाण, ऐतिहासिक कसौटी करने पर अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं,** अतः पूर्व में बताये हुए प्राचीन प्रमाणों के आधार से सिद्ध होता है कि जिनेश्वरसूँरिजी को 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का उल्लेख उनकी परंपरा में 200 साल तक किसी ने नहीं किया है परंतु चान्द्रकुल आदि का ही उल्लेख किया है। **अतः स्पष्ट होता है कि जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद नहीं मिला था।**

* इसी तरह खरतरगच्छ की प्राचीनता को सिद्ध करने हेतु हाल में **जहाज मंदिर** (5 सितम्बर 2018) के अंक में **कवि पल्ह** की कृति प्राचीन प्रमाण के रुप में दी गई है। उसके समाधान के लिए देखें ''इतिहास के आईनेमें अभयदेवसूरिजी का गच्छ'' पुस्तक।

पुरातत्त्वाचार्य जिनविजयजी के उल्लेख...

जिनेश्वरसूरिजी के जीवन चरित्र विषयक अर्वाचीन साहित्य के अवलोकन के पूर्व में यहाँ पर **जिनविजयजी** के तत्संबंधी लेख देने उचित लगते हैं। वे इस प्रकार हैः-

(1) जिनेश्वर सूरि के जीवन चरित्र का साहित्य

जिनेश्वर सूरि के इस प्रकार के युगावतारी जीवन कार्य का निर्देश करनेवाले उल्लेख यों तो सेंकडों ही ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। क्योंकि उनकी शिष्य सन्तति में आज तक सेंकडों ही विद्वान् और ग्रन्थकार यतिजन हो गये हैं और उन सबने प्रायः अपनी अपनी कृतियों में इनके विषय में थोड़ा-बहुत स्मरणात्मक उल्लेख अवश्य किया है। इन ग्रंथों के सिवाय, बीसियों ऐसी गुरुपट्टावलियाँ हैं, जिनमें इनके चैत्यवास निवारण रूप कार्य का अवश्य उल्लेख किया हुआ रहता है। ये पट्टावलियाँ भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न यतियों द्वारा, प्राकृत, संस्कृत और प्राचीन देश्य भाषा में लिपिबद्ध की हुई है। इन ग्रंथस्थ लेखों के अतिरिक्त जिनमूर्तियों और जिनमन्दिरों के ऐसे अनेक शिलालेख भी मिलते हैं। जिनमें भी इनके विषयका कितनाक सूचनात्मक एवं परिचयात्मक निर्देश किया हुआ उपलब्ध होता है। **परन्तु ये सब निर्देश, अपेक्षाकृत उत्तरकालीन हो कर, मूलभूत जो सबसे प्राचीन निर्देश हैं उन्हीं के अनुलेखन रूप होने से तथा कहीं-कहीं विविध प्रकार की अनैतिहासिकताका स्वरूप धारण कर लेने से, इनके विषय में यहाँ खास विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।** हम यहाँ पर उन्हीं निर्देशों का सूचन करते हैं जो सबसे प्राचीन हो कर ऐतिहासिक मूल्य अधिक रखते हैं। **(कथाकोष-प्रकरण-प्रस्तावना, पृ. 7-8)**

(2) जिनेश्वरसूरि के चरित्र की साहित्यिक सामग्री।

जिनेश्वरसूरि के जीवन का परिचय करानेवाली ऐतिहासिक एवं साहित्यिक मुख्य साधन-सामग्री निम्न प्रकार है-

1. जिनदत्तसूरिकृत **'गणधरसार्द्धशतक'** ग्रंथ की **सुमतिगणि** विरचित **बृहद्वृत्ति**।
2. जिनपालोपाध्याय संगृहीत **'स्वगुरुवार्ता नामक बृहत् पट्टावलि'** का आद्य प्रकरण।

3. प्रभाचंद्रसूरिविरचित '**प्रभावकचरित्र**' का अभयदेवसूरिप्रबन्ध।

4. सोमतिलकसूरिकृत '**सम्यक्त्व सप्ततिकावृत्ति**' में कथित धनपाल-कथा।

5. किसी अज्ञातनामक विद्वान् की बनाई हुई प्राकृत 'वृद्धाचार्य-प्रबन्धावलि'..

5) पांचवाँ साधन, एक प्राकृत '**वृद्धाचार्यप्रबन्धावलि**' है जो हमें पाटण के भण्डार में उपलब्ध हुई है। **इसके रचयिता का कोई नाम नहीं मिला।** मालूम देता है जिनप्रभ सूरि (विविधतीर्थकल्प तथा विधिप्रपा आदि ग्रंथों के प्रणेता) के किसी शिष्य की की हुई रचना है, क्योंकि इसमें जिनप्रभ सूरि एवं उनके गुरु जिनसिंह सूरि का भी चरित-वर्णन किया हुआ है। इसमें संक्षेप में वर्द्धमान सूरि, जिनेश्वर सूरि आदि आचार्यों का चरित-वर्णन है परंतु **वह प्रायः इधर-उधर से सुनी गई किंवदन्तियों के आधार पर लिखा गया मालूम दे रहा है। इससे इसका भी ऐतिहासिकत्व विशेष विश्वसनीय हमें नहीं प्रतीत होता।** जिनेश्वर सूरि की पूर्वावस्था का ज्ञापक उल्लेख इसमें और ही तरह का है जो सर्वथा कल्पित मालूम देता है।

इन साधनों में, प्रथम के तीन निबन्ध हमें अधिक आधारभूत मालूम देते हैं और इसलिये इन्हीं निबन्धों के आधार पर हम यहाँ जिनेश्वर सूरि के चरित का सार देने का प्रयत्न करते हैं। **(कथाकोष प्रकरण-प्रस्तावना पृ. 20-21)**

(3) वृद्धाचार्य प्रबन्धावलिगत जिनेश्वर सूरि के चरित का सार।

ऊपर हमने, इनके चरित का साधनभूत ऐसे एक प्राकृत 'वृद्धाचार्य-प्रबन्धावलि' नामक ग्रंथ का भी निर्देश किया है। इसमें बहुत ही संक्षेप में जिनेश्वर सूरि का प्रबन्ध दिया गया है जो कि असंबद्धप्रायः है।*

(कथाकोषप्रकरण-प्रस्तावना, पृ. 36)

(4) कथाओं के सारांश का तारण।

इस प्रकार ऊपर हमने जिनेश्वरसूरि के चरित का वर्णन करने वाले जिन

* (1) जिनविजयजी की यह बात सही है, क्योंकि इस प्रबन्धावली में सं. 1167 में स्वयं अभयदेवसूरिजी के हाथ से जिनवल्लभगणिजी को आचार्य पद दिये जाने की बात लिखी है, वह इतिहास विरुद्ध है। इतिहास में अभयदेवसूरिजी का सं. 1134/ सं. 1138 स्वर्गवास होना बताया है, तो सं. 1167 में वे कैसे मौजूद हो सकते हैं? - संपादक

प्रबन्धों-निबन्धों का सार उद्धृत किया है, उससे उनके चरित के दो भाग दिखाई पड़ते हैं-एक उनकी पूर्वावस्था का और दूसरा दीक्षित होने के बाद का। पूर्वावस्था के चरित के सूचक प्रभावक चरित आदि जिन भिन्न-भिन्न 3 आधारों का हमने सार दिया है, उससे ज्ञात होता है कि वे परस्पर विरोधी हो कर असंबद्ध से प्रतीत होते हैं। **इनमें सोमतिलकसूरि कथित धनपालकथा वाला जो उल्लेख है यह तो सर्वथा कल्पित ही समझना चाहिये। क्योंकि धनपाल ने स्वयं अपनी प्रसिद्ध कथा-कृति 'तिलकमञ्जरी' में अपने गुरु का नाम महेन्द्रसूरि सूचित किया है और प्रभावक चरित में भी उसका यथेष्ट प्रमाणभूत वर्णन मिलता है। इसलिये धनपाल और शोभन मुनि का जिनेश्वर सूरि को मिलना और उनके पास दीक्षित होना आदि सब कल्पित है।** मालूम देता है सोमतिलकसूरि ने धनपाल की कथा और जिनेश्वर सूरि की कथा, जो दोनों भिन्न-भिन्न हैं, उनको एकमें मिलाकर इन दोनों कथाओं का परस्पर संबंध जोड़ दिया है जो सर्वथा अनैतिहासिक है।

वृद्धाचार्य प्रबन्धावलि में, जिनेश्वरसूरि की सिद्धपुर में सरस्वती के किनारे वर्धमानसूरि से भेंट हो जाने की जो कथा दी गई है, वह भी **वैसी ही काल्पनिक समझनी चाहिए।**

प्रभावकचरित की कथा का मूलाधार क्या होगा सो ज्ञात नहीं होता। इसमें जिस ढंग से कथा का वर्णन दिया है, उससे उसका असंबद्ध होना तो नहीं प्रतीत होता। दूसरी बात यह है कि प्रभावकचरितकार बहुत कुछ आधारभूत बातों-ही-का प्रायः वर्णन करते हैं। उन्होंने अपने ग्रंथ में यह स्पष्ट ही निर्देश कर दिया है कि इस ग्रंथ में जो कुछ उन्होंने कथन किया है उसका आधार या तो पूर्व लिखित प्रबन्धादि है या वैसी पुरानी बातों का ज्ञान रखने वाले विश्वस्त वृद्धजन हैं। इसमें से जिनेश्वर की कथा के लिये उनको क्या आधार मिला था इसके जानने का कोई उपाय नहीं है। संभव है वृद्धपरंपरा ही इसका आधार हो। **क्योंकि यदि कोई लिखित प्रबन्धादि आधारभूत होता तो उसका सूचन हमें उक्त सुमतिगणि या जिनपालोपाध्याय के प्रबन्धों में अवश्य मिलता।** इन दोनों ने अपने निबन्धों में इस विषय का कुछ भी सूचन नहीं किया है **इससे ज्ञात होता है कि जिनेश्वरकी पूर्वावस्था के विषय में कुछ विश्वस्त एवं आधारभूत वार्ता उनको नहीं मिली थी।** ऐसा न होता तो वे अपने निबन्धों में इसका सूचन किये बिना कैसे चुप रह सकते थे। क्योंकि उनको तो इसके उल्लेख करने का सबसे अधिक आवश्यक और उपयुक्त प्रसंग प्राप्त

था और इसके उल्लेख बिना उनका चरितवर्णन अपूर्ण ही दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में **प्रभावकचरित्र के कथन को कुछ संभवनीय मानना हो तो माना जा सकता है।(कथाकोषप्रकरण–प्रस्तावना, पृ. 37)**

(5) परन्तु सुमतिगणिजी और जिनपालोपाध्याय ने इस वर्णन को खूब बढ़ा–चढ़ाकर तथा अपने गुरुओं का बहुत ही गौरवमय भाषा में और चैत्यवसियों का बहुत ही क्षुद्र एवं ग्राम्य भाषा में, नाटकीय ढंग से चित्रित किया है– जिसका साहित्यिक दृष्टि से कुछ महत्त्व नहीं है। तब प्रभावक चरितकार ने उस वर्णन को बहुत ही संगत, संयत और परिमित रूप में आलेखित किया है, जो बहुत कुछ साहित्यिक मूल्य रखता है।

(कथाकोषप्रकरण–प्रस्तावना, पृ. 40–41)

जिनविजयजी के लेखों का सार

इन लेखों के आधार से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि –

1) जिनविजयजी के द्वारा गणधरसार्द्धशतक की बृहद्वृत्ति, गुर्वावली और प्रभावक चरित्र ये तीन ग्रंथ ही जिनेश्वरसूरिजी के चरित्र के विषय में आधार रूप माने गये हैं।

2) तथा धनपाल कवि और शोभनमुनि की कथा को जिनेश्वरसूरिजी से जोड़ने के कारण सोमतिलकसूरिजी की 'सम्यक्त्व सप्ततिका' की टीका को प्रमाणित नहीं माना है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि '**वर्तमान में कवि धनपाल और शोभनमुनिजी के खरतरगच्छीय होने का जो प्रचार किया जा रहा है, वह इतिहास से विरुद्ध है।**'

3. वृद्धाचार्य प्रबन्धावली जो 15–16वीं शताब्दी की अज्ञात कर्तृक कृति है, वह असंबद्ध प्रायः है, अतः ऐतिहासिक मूल्य नहीं रखती है।

4. सुमतिगणिजी और जिनपाल उपाध्यायजी द्वारा किया गया वाद का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण होने से विशेष महत्त्व का नहीं है। ऐसी स्थिति में 'प्रभावक चरित्र' के वर्णन को मुख्य प्रमाण मानना उचित लगता है।

इस प्रासंगिक निरीक्षण के बाद हम अपने मूल विषय पर आते हैं। "**जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला था**" **ऐसा जिनविजयजी निर्दिष्ट पाँच साहित्यिक सामग्री में से केवल वृद्धाचार्य प्रबन्धावली में ही उल्लेख मिलता है। और**

वह भी जिनविजयजी के मत से विशेष ऐतिहासिक मूल्य नहीं रखती है। तथा खरतर बिरुद की प्राप्ति की बात जिसमें आती है, ऐसी वर्तमान में उपलब्ध 18-19वीं शताब्दी की पट्टावलियाँ भी इस प्रबन्धावली के आधार से ही लिखी गयी है। अतः जिनविजयजी ने उन्हें भी विश्वसनीय नहीं मानी है।

महो. विनयसागरजी ने भी अर्वाचीन पट्टावलियों में त्रुटियाँ होने की बात को 'खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास' के स्वकथ्य में पृ. 36 पर स्वीकारा है। देखिये- 'क्षमाकल्याणोपाध्याय रचित खरतरगच्छ पट्टावली की रचना वि. सं. 1830 में हुई है। यह पट्टावली श्रवण परम्परा पर आधारित है। 8, 9 शताब्दी पूर्व के आचार्यों के वृत्तान्त एवं घटनाओं में कुछ भूल हो, यह स्वाभाविक है।'

इस प्रकार जिनविजयजी के संशोधनात्मक उल्लेख से ही 'वृद्धाचार्य प्रबन्धावलि एवं उसका अनुसरण करनेवाली अर्वाचीन पट्टावलीयाँ अनैतिहासिक सिद्ध होती हैं, उसी के साथ उसमें बताई गयी 'खरतर बिरुद प्राप्ति की बात' अनैतिहासिक एवं अर्वाचीन कल्पना सिद्ध होती है। इस बात की पुष्टि महो. विनयसागरजी के उल्लेख से भी होती है।

अतः खरतर बिरुद प्राप्ति की बात के निराकरण हेतु विशेष लिखने की जरुरत नहीं रहती है, फिर भी खरतर बिरुद प्राप्ति की बात का लंबे समय से प्रचार किया गया होने से सामान्य जन के अंतःस्थल में वह ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। इसलिए 'खरतर बिरुद प्राप्ति' के जो उल्लेख मिलते है, उनका क्रमबद्ध ऐतिहासिक निराकरण यहाँ पर दिया जा रहा है, ताकि इसे पढ़कर चिरकाल से रूढ़ हुई गलत मान्यता को सुधारी जा सके।

महो. विनयसागरजी का स्पष्ट बयान!!!

''कुछ ऐसी भी जिन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं, जिन पर स्पष्ट रूप से 'प्रतिष्ठितं खरतरगणाधीश्वर श्री जिनदत्तसूरिभिः' ऐसा शब्द उत्कीर्ण है। इसकी लिपि परवर्तीकालीन है। दूसरे इस समय तक खरतरगच्छ शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ था, अतः ये लेख अप्रामाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं है।''

(बीकानेर जैन लेख संग्रह, लेखांक 2183)

-खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास, खण्ड 1, पृ. 53

'सं. 1080 में दुर्लभ राजसभा' की कसौटी

खरतरगच्छ के परवर्ती साहित्य में जिनेश्वरसूरिजी को सं. 1080, सं. 1024 आदि में दुर्लभ राजा की सभा में 'खरतर' बिरुद मिलने के उल्लेख मिलते हैं। परंतु कसौटी करने पर वे गलत सिद्ध होते हैं, क्योंकि

पं. गौरीशंकरजी ओझा के **'सिरोही राज के इतिहास'**, पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ के **'भारतवर्ष का प्राचीन राजवंश', 'गुर्जरवंश भूपावली'** तथा आचार्य मेरुतुंगसूरिकृत **'प्रबंध चिन्तामणि'** आदि अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि **'दुर्लभ राजा सं. 1066 से सं. 1078** तक ही विद्यमान थे तथा उनके बाद सं. 1078 से सं. 1120 तक भीमराज का राज्य था। और इसीलिये खरतर यति रामलालजी ने खरतर बिरुद की प्राप्ति के विषय में 'महाजनवंश मुक्तावली' पृ. 167 पर सं. 1080 में दुर्लभ (भीम) और खरतर-वीरपुत्र आनन्दसागरजी ने श्री कल्पसूत्र के हिन्दी अनुवाद में भी वि. सं. 1080 में राजा दुर्लभ (भीम) ऐसा लिखना चालु किया।[*1]

(भीम) इस तरह कोष्ठक में लिखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें अपनी पट्टावलीओं में बतायी सं. 1080 में दुर्लभ राजा की बात में संदेह हो गया था।

इतिहास में बढ़ा एक और विसंवाद

इन सब ऐतिहासिक विसंवादों के निराकरण हेतु वर्तमान में सं. 1075 में 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का नया प्रचार किया जाने लगा है,[*2] ताकि दुर्लभराजा की मौजुदगी में इस बिरुद प्राप्ति की सिद्धि हो सके।

सं. 1075 में खरतर बिरुद प्राप्ति की कल्पना का अब तक के किसी भी साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता है। **इस तरह किसी ऐतिहासिक आधार को दिये बिना अपनी मान्यता की सिद्धि के लिए इतिहास में फेरफार करना इतिहास के साथ अन्याय कहलाता है**[*3] और इससे खरतरगच्छ की उत्पत्ति में प्रचलित विसंवादों में एक और बढ़ौती ही हुई है। इस कारण से 'खरतरगच्छ के उद्भव' के विषय में खरतरगच्छ के अनुयायियों में भी मतभेद पड़ गया है।

---

*1 देखें-खरतरमतोत्पत्ति भाग -2, पृ. 3

*2 देखें-खरतरगच्छ का गौरवशाली इतिहास-मुनि मनितप्रभसागरजी, श्वेताम्बर जैन, जून 2016

*3 पू. जिनपियूषसागरजी म. ने भी ''खरतरगच्छ का उद्भव'' पुस्तक निकालकर सं. 1075 के मत का खण्डन किया है।

क्या जिनेश्वरसूरिजी और सूराचार्य मिले थे?

वृद्धाचार्य प्रबन्धावली आदि खरतरगच्छ के परवर्ती ग्रंथों में तथा खरतरगच्छ के इतिहास संबंधी प्रायः वर्तमान के सभी साहित्य में* सं. 1080 में **जिनेश्वरसूरिजी का चैत्यवासी सूराचार्य के साथ वाद होना भी बताया जाता है,** जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विसंवाद से भरा हुआ प्रतीत होता है क्योंकि–

1. एक तो सं. 1080 में दुर्लभ राजा के नहीं होने से, उसकी राज–सभा में वाद ही शक्य नहीं है।

2. दुसरी बात, **प्रभावक चरित्र** के अनुसार सूराचार्य तो द्रोणाचार्य के भतीजे एवं शिष्य थे। तथा इसी ग्रंथ में सूराचार्य का दुर्लभराजा के बाद में हुए भीम देव (पाटण) एवं भोजराजा (मालवा) संबंधित रोमांचक इतिहास भी दिया है।

दुर्लभ राजा की राज्यसभा में जिनेश्वरसूरिजी के प्रतिस्पर्धी आचार्य एवं चैत्यवासिओं के अधिपति के रूप में सूराचार्य का होना भी संभव नहीं है क्योंकि जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य ऐसे अभयदेवसूरिजी के समय तक तो सूराचार्य के गुरु द्रोणाचार्य ही पाटण संघ के प्रमुख आचार्य के रूप में विद्यमान थे। एवं वे चैत्यवासी होते हुए भी शुद्ध प्ररुपक थे, इसीलिए अभयदेवसूरिजी ने भी अपनी नवाङ्गी टीकाओं एवं अन्य ग्रंथों का उनके पास संशोधन करवाया था।

अभयदेवसूरिजी ने स्वयं 'भगवती सूत्र' की टीका की प्रशस्ति के–

शास्त्रार्थनिर्णयसुसौरभलम्पटस्य, विद्वन्मधुव्रतगणस्य सदैव सेव्यः।
श्री निर्वृताख्यकुलसन्नदपद्मकल्पः श्री द्रोणसूरिरनवद्ययशःपरागः।।9।।

शोधितवान् वृत्तिमिमां युक्तो विदुषां महासमूहेन।
शास्त्रार्थनिष्कनिकषणकषपट्टककल्पबुद्धीनाम्।।10।।

इन दो श्लोकों में 9वें श्लोक में–द्रोणाचार्यजी को शास्त्रार्थ निर्णय हेतु आश्रयणीय कहकर उनकी ज्ञान–गरिमा एवं शुद्धप्ररूपकता की प्रशंसा की है।

उसी तरह 10वें श्लोक में **'विदुषां महासमूहेन...'** के द्वारा द्रोणाचार्यजी के शिष्यों की ज्ञान गरिमा एवं शुद्ध प्ररूपकता की भी प्रशंसा की है।

---

* देखें – खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास–महोपाध्याय विनयसागरजी।
– खरतरगच्छ का उद्भव–आ. जिनपीयूषसागरसूरिजी।
– खरतरगच्छ का गौरवशाली इतिहास–मुनि मनितप्रभसागरजी, श्वेताम्बर जैन, जुन 2016

सूराचार्य द्रोणाचार्यजी के प्रमुख शिष्य थे अतः यह प्रशंसा मुख्यतया उनको लेकर की गयी थी।

तथा स्वयं द्रोणाचार्यजी ने ओघनिर्युक्ति की टीका में चैत्यवासियों का खण्डन करके उद्यत विहार की प्ररूपणा की है, अतः उनकी मौजुदगी तक तो सूराचार्य का वरिष्ठ आचार्य होने एवं चैत्यवास के पक्ष में बैठकर वाद के लिए उपस्थित होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। इतिहास प्रेमी इस पर चिंतन करें।

जिनविजयजी के अभिप्राय की समीक्षा

इस प्रकार प्रभावक चरित्र एवं अभयदेवसूरिजी की टीका की प्रशस्ति तथा द्रोणाचार्यजी की ओघनिर्युक्ति की टीका के अनुसार जब जिनेश्वरसूरिजी और सूराचार्य का वाद ही संभवित नहीं होता हैं, तब ''बृहद्वृत्ति, गुर्वावली आदि के आधार से जिनेश्वरसूरिजी का सूराचार्य से वाद हुआ होने पर भी प्रभावक चरित्र में सूराचार्य के चरित्र वर्णन में उनके मानभंग के भय से वाद का वर्णन नहीं किया गया'', इस प्रकार का जिनविजयजी का ओसवाल वंश पृ. 33-34 पर जो अभिप्राय दिया गया है और जिसका उद्धरण 'खरतरगच्छ का उद्भव' पृ. 33-34 पर किया गया है, वह भी निरस्त हो जाता है।

दूसरी बात- जिनविजयी ने अनाभोग के कारण ऐसा अभिप्राय दिया होगा ऐसा लगता है, क्योंकि स्वयं ने ही बृहद्वृत्ति, गुर्वावली से ज्यादा प्रभावक चरित्र को प्रमाणिक माना है तथा बृहद्वृत्ति तथा गुर्वावली के वर्णन को अतिशयोक्ति माना है। (देखें Ch-6)

खरतरगच्छीय नहीं थे कवि धनपाल !!!

-जिनविजयजी

धनपाल ने स्वयं अपनी प्रसिद्ध कथा-कृति 'तिलकमञ्जरी' में अपने गुरु का नाम महेन्द्रसूरि सूचित किया है और प्रभावक चरित में भी उसका यथेष्ट प्रमाणभूत वर्णन मिलता है। इसलिये धनपाल और शोभन मुनि का जिनेश्वरसूरि को मिलना और उनके पास दीक्षित होना आदि सब कल्पित है।

- कथाकोष प्रकरण-प्रस्तावना, पृ. 37

‘खरतर’ शब्द का अर्थ एवं बिरुद के रूप में विरोधाभास

I ‘खरतर’ यह शब्द वाद में जीते हुए जिनेश्वरसूरिजी के पक्ष की सच्चाई की प्रशंसा के लिए प्रयुक्त किया गया था, ऐसा मानना ही उचित नहीं लगता है क्योंकि–

1. संस्कृत में ‘खरतर’ शब्द का अर्थ–अति कठोर, तेज, तीखा, निष्ठुर, कर्कश, गरम आदि होता है एवं व्यवहार में भी उसका प्रयोग ‘विशेष कठोरता’ के लिये होता है। वर्तमान में भी ‘इनका स्वभाव खडतल है’ और ‘यह संयम में खडतल है’ इस प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं। परंतु खरतर शब्द का कहीं भी सत्य–निष्ठता के अर्थ में प्रयोग नहीं पाया जाता है।
2. इस विसंवाद को टालने के लिये अगर कहा जाय कि ‘खरे हो’ ऐसे अर्थ वाला ‘खरतर’ शब्द ‘खरा’ ऐसे देशी शब्द से बना है जिसका प्रयोग किया गया था।[*1] तो वह भी शक्य नहीं है क्योंकि **‘खरा’** यह देशी शब्द है और **‘तर’** यानि **‘तरप्’** यह संस्कृत प्रत्यय है, तो दोनों का जोड़ान कैसे होगा? तथा दुर्लभ राजा जैसा विद्वान राजा इस प्रकार का गलत प्रयोग कैसे कर सकता है? यह भी विचारणीय है।
3. तथा व्यवहार में ‘खरा’ का प्रतिपक्षी शब्द ‘खोटा’ होता है।[*2] अगर ‘खरे हो’ इस अर्थ में जीतने वाले पक्ष को खरतर बिरुद दिया गया तो, हारनेवाले पक्ष के लिये ‘खोटे हो’ इस अर्थ वाले शब्द का प्रयोग किया

---

*1 ‘समस्या समाधान और संतुष्टि’ पृ. 192 पर मनितप्रभसागरजी म.सा. ने, **‘राजा ने खड़े होकर क्या कहा?’** इस प्रश्न 22 के जवाब में लिखा कि –**‘आचार्यवर ! आप खरे हो !’ इसीसे खरतरगच्छ की परम्परा का सूत्रपात हुआ।’**

विचारणीय प्रश्न – इसी पृ. 192 के प्रश्न 25 के जवाब में ‘‘जिनदत्तसूरिजी के समय विधिमार्ग ‘खरतरगच्छ’ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।’’ ऐसा लिखा है तो प्रश्न होता है कि जिनेश्वरसूरिजी को सं. 1080 में ‘खरे हो’ ऐसा संबोधन किया गया हो और 125 साल के लंबे समय के बाद सं. 1204 में जिनदत्तसूरिजी के समय में गच्छ का नाम ‘खरतरगच्छ’ हुआ यह कैसे संभव है?

*2. अभी अभी खरतरगच्छ की ओर से छपी ‘खरी–खोटी’ इस पुस्तिका का नाम भी इस बात की पुष्टि करता है।

गया होना चाहिए परंतु ऐसा नहीं है, क्योंकि हारनेवाले चैत्यवासी 'कँवला' 'कोमला' इस प्रकार कोमलता वाचक शब्दों से कहे जाने लगे, ऐसा खरतरगच्छ की पट्टावलियाँ कहती है। अतः खरतरगच्छ की पट्टावलीयों से भी 'खरा हो' इस अर्थ में खरतर बिरुद का दिया जाना गलत सिद्ध होता है।

इस प्रकार व्याकरण, व्यवहार एवं खरतरगच्छ की पट्टावली के उल्लेखों से 'खरा हो' इस अर्थ में 'खरतर' बिरुद का दिया जाना गलत सिद्ध होता है।

II दूसरी बात जिनेश्वरसूरिजी को आचार की कठोरता के उपलक्ष्य में 'खरतर' बिरुद दिया गया था, ऐसा भी नहीं कह सकते हैं। क्योंकि शिथिलाचारी ऐसे चैत्यवासी एवं उद्यत विहारी ऐसे जिनेश्वरसूरिजी में से किसकी चर्या कठोर थी वह तो सामान्य जन में भी प्रसिद्ध थी। अतः **'आचार की कठोरता किसकी है?' उसके निर्णय हेतु वाद का होना ही संभव नहीं है और न ही वाद में विजय पाने पर किसी के आचार की कठोरता की प्रशंसा की जाती है, वहाँ तो विजयी पक्ष की सत्यता एवं ज्ञान की उत्कृष्टता ही प्रशंसनीय होती है।**

इस प्रकार सिद्ध होता है कि 'जिनेश्वरसूरिजी का पक्ष **खरा** है, **शास्त्रीय** है' अथवा 'उनका **चारित्र कठोर** है', इसमें से किसी भी अर्थ में **'खरतर'** शब्द का बिरुद के रूप में प्रयोग किया जाना ही **जब संभव नहीं है,** तब जिनेश्वरसूरिजी को **खरतर** बिरुद दिया गया था, यह कैसे कह सकते हैं?

महोपाध्याय विनयसागरजी ने भी **'खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास', प्रथम खण्ड पृ.** 12 पर–

''**खरतरगच्छीय परंपरा के अनुसार** चौलुक्य नरेश दुर्लभराज की राजसभा में चैत्यवासियों के प्रमुख आचार्य सूराचार्य से शास्त्रार्थ में विजयी होने पर राजा ने जिनेश्वरसूरि को खरतर उपाधि प्रदान की और उनकी शिष्यसन्तति खरतरगच्छीय कहलायी। **दुर्लभराजा ने जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद प्रदान किया हो अथवा नहीं किन्तु इतना तो सुनिश्चित है कि शास्त्रार्थ में**[*1] उनका पक्ष सबल अर्थात् खरा सिद्ध हुआ और उसी समय से सुविहितमार्गीय मुनिजनों के लिये गूर्जर भूमि विहार हेतु खुल गया। मुनि जिनविजय आदि विभिन्न विद्वानों ने भी इस बात को स्वीकार

*1 सूराचार्य से वाद हुआ था या नहीं उसके स्पष्टीकरण के लिये देखिये Ch-9

किया है।''

तथा पृ. 13 पर –

''यह सत्य है कि इस समय खरतर शब्द का प्रचलन नहीं रहा किन्तु जैसा कि ऊपर हम देख चुके हैं खरतर शब्द से पहले इसके लिये 'सुविहितमार्ग' एवं 'विधिमार्ग' जैसे शब्द प्रचलित रहे और वर्धमान, जिनेश्वर, अभयदेव आदि को सभी विद्वान् सुविहितमार्गीय ही बतलाते हैं। *स्वयं खरतरगच्छीय परम्परा भी उन्हें अपना पूर्वज मानती है। और कोई भी अन्य परम्परा स्वयं को इनसे सम्बद्ध नहीं करती*[*1] *अतः* ***यह स्पष्ट है कि वर्धमान, जिनेश्वर, अभयदेव खरतरगच्छीय नहीं*** *अपितु खरतरगच्छीय जिनवल्लभ, जिनदत्त, मणिधारी जिनचंद्रसूरि, जिनपतिसूरि आदि के पूर्वज अवश्य थे और ऐसी स्थिति में उत्तरकालीन मुनिजनों द्वारा अपने पूर्वकालीन आचार्यों को अपने गच्छ का बतलाना स्वाभाविक ही है।''*[*2]

इन उल्लेखों से जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिलने के विषय में संदेह बताया है एवं अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे, ऐसा स्वीकार किया है।

खरतरगच्छ के ही इतिहासज्ञ जब इस प्रकार स्वीकार कर रहे हैं, तब खरतरगच्छ के सभी अनुयायिओं को भी इस विषय पर शान्ति से विचार करना जरुरी बन जाता है।

प्रमाण क्या कहते हैं ???

'**खरतरगच्छ का उद्भव**' पुस्तिका के पृ. 17 पर दिया गया '**गणधर–सार्धशतक**' **की बृहद्वृत्ति का 'प्राप्त खरतर बिरुद भगवन्तः श्री जिनेश्वरसूरयः**' ऐसा पाठ, Ch-16 पर दिये गये प्रमाणों से बाधित होता है।

---

*1. उनकी यह बात उचित नहीं है क्योंकि रूद्रपल्लीय गच्छ तथा अभयदेवसूरि संतानीय (छत्रापल्लीय) परंपरा भी स्वयं को इन्हीं पूर्वाचार्यों से जोड़ती ही है। –देखें Ch-3

*2. अभयदेवसूरिजी आदि जिनवल्लभगणिजी, जिनदत्तसूरिजी आदि के पूर्वज थे या नहीं ? उसके स्पष्टीकरण हेतु देखिये "इतिहास के आईनेमें अभयदेवसूरिजी का गच्छ" पुस्तक

'खरतर' शब्द की प्रवृत्ति कब और किससे?

इस प्रकार जब सिद्ध होता है कि जिनेश्वरसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति नहीं हुई, तब प्रश्न उठता है कि खरतरगच्छ के आद्य पुरुष कौन थे?

इस पर अगर विचार किया जाय तो पता चलेगा कि–

खरतरगच्छ में जिनदत्तसूरिजी को प्रथम दादा गुरुदेव के रूप में जितना महत्त्व एवं बहुमान दिया गया है, उतना जिनेश्वरसूरिजी के विषय में नहीं दिखता है। तथा वर्तमान में भी खरतरगच्छ वाले प्रतिक्रमण में जिनदत्तसूरिजी का काउस्सग्ग करते हैं, जिनेश्वर–सूरिजी का नहीं।

दूसरी बात जिनवल्लभगणिजी के गुरुभाई एवं जिनदत्तसूरिजी के समकालीन ऐसे जिनशेखरसूरिजी की शिष्य परंपरा भी खुद को 'रुद्रपल्लीय' कहती है, 'खरतर' नहीं।

अतः अनुमान किया जा सकता है कि **'खरतर' शब्द की प्रवृत्ति जिनदत्तसूरिजी से हुई होगी, इसीलिए 'खरतर' गच्छ की परंपरा उन्हीं को वफादार भी है।**

अंचलगच्छ के शतपदी ग्रंथ तथा तपागच्छ की पट्टावली आदि अन्य गच्छ के ग्रंथों में सं. 1204 से हीं खरतरगच्छ की उत्पत्ति बतायी जाती है, जो उपर किये गये अनुमान को पुष्ट करती है। तथा कई इतिहासज्ञ भी इसी बात को प्रमाणित करते हैं।[*1]

इतना ही नहीं, **वर्तमान में, शत्रुंजय की पावन भूमि पर हुए खरतरगच्छ महासम्मेलन एवं पदारोहण समारोह की आमंत्रण पत्रिका में लिखा है कि– 'दादा गुरुदेव श्री जिनदत्तसूरिजी के काल में खरतरगच्छ के रूप में गौरवान्वित हुआ।'** तथा **'समस्या–समाधान और संतुष्टि'** पुस्तक के पृ. 192 में **मुनि मनितप्रभसागरजी** ने प्रश्न 25 में **'जिनदत्तसूरि के समय विधिमार्ग किस नाम से प्रसिद्ध हुआ?'** के जवाब में **'खरतरगच्छ'** यह जवाब दिया है। इन दोनों उल्लेखों से इस बात की पुष्टि भी होती है।

*1. विशेषार्थी देखें 1) निबन्ध निचय पृ. 27, पं. कल्याणविजयजी म.सा.
2) डॉ बुलर की रिपोर्ट
3) तथा **जैनधर्मनो प्राचीन इतिहास** भाग–2 पृ.19 –पं.हीरालाल

उपाध्याय सुखसागरजी का उल्लेख

उपाध्याय मुनि सुखसागरजी महाराजजी ने ता. 20 मई, 1956 को अजमेर में श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज अष्टम शताब्दी निर्वाण महोत्सव में **अभिभाषण** दिया था, जो पुस्तिका के रूप में छपा हुआ मिलता है। उसमें उन्होंने पृ. 18-19 पर इस प्रकार कहा है कि-

''इस तरह पीछे बहुत प्रसिद्धि प्राप्त उक्त ***खरतरगच्छ के अतिरिक्त, जिनेश्वरसूरि की शिष्य परंपरा में से अन्य कई एक छोटे बड़े गण-गच्छ प्रचलित हुए*** *और उनमें भी कई बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वान, ग्रंथकार, व्याख्यानिक, वादी, तपस्वी, चमत्कारी साधु यति हुए जिन्होंने अपने व्यक्तित्व से जैन समाज को समुन्नत करने में उत्तम योग दिया।''*

इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकारा है कि जिनेश्वरसूरिजी की शिष्य परंपरा में से अन्य कई एक छोटे-बड़े गण-गच्छ प्रचलित हुए।

इससे भी स्पष्ट होता है कि खरतरगच्छ जिनेश्वरसूरिजी से शुरु नहीं हुआ था।

इतना ही नहीं पृ. 16 पर 'खरतरगच्छ' की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार का वक्तव्य दिया हैः-

विधिपक्ष अथवा खरतर गच्छ का प्रादुर्भाव और गौरव

इन्हीं जिनेश्वरसूरि के एक प्रशिष्य आचार्य श्री जिनवल्लभसूरि और उनके पट्टधर श्री जिनदत्तसूरि (वि.सं. 1169-1211) हुए जिन्होंने अपने प्रखर पाण्डित्य, प्रकृष्ट चारित्र और प्रचण्ड व्यक्तित्व के प्रभाव से मारवाड़, मेवाड़, वागड़, सिंध, दिल्ली मण्डल और गुजरात के प्रदेश में हजारों अपने नये-नये भक्त श्रावक बनाये, हजारों ही अजैनों को उपदेश दे-दे कर नूतन जैन बनाये, स्थान-स्थान पर अपने पक्ष के अनेकों नये जिनमन्दिर और जैन उपाश्रय तैयार करवाये। अपने पक्ष का नाम इन्होंने विधिपक्ष ऐसा उद्घोषित किया और जितने भी नये जिनमंदिर इनके उपदेश से, इनके भक्त श्रावकों ने बनवाये, उनका नाम विधिचैत्य ऐसा रखा गया। ***परंतु पीछे से चाहे जिस कारण से हो इनके अनुगामी समुदाय को खरतर पक्ष या खरतरगच्छ ऐसा नूतन नाम प्राप्त हुआ*** *और तदनन्तर यह समुदाय इसी नाम से अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ, जो नाम आज तक अविछिन्न रूप से विद्यमान है।''*

इसमें तो उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकारा है कि **''जिनदत्तसूरिजी के पश्चात् ही उनके समुदाय को किसी कारण से खरतरगच्छ ऐसा नूतन नाम प्राप्त हुआ।''**

दुर्लभराजा का समय निर्णय

पाटण नगर वनराज चावड़ा ने वि. सं. 802 में बसाया था, बाद में वहाँ पर कौन-कौन राजा ने कितने-कितने वर्ष राज किया था। उसकी रूपरेखा इस प्रकार हैः-

चावड़ा वंश के राजा

1. वनराज चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 802 से 862 तक	कुल 60
2. योगराज चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 862 से 897 तक	कुल 35
3. खेमराज चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 897 से 922 तक	कुल 25
4. भूवड़ चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 922 से 951 तक	कुल 29
5. वैरीसिंह चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 951 से 976 तक	कुल 25
6. रत्नादित्य चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 976 से 991 तक	कुल 15
7. सामन्तसिंह चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 991 से 998 तक	कुल 7

इस तरह चावड़ा वंश के राजाओं ने 196 वर्ष राज्य किया, अनन्तर सोलंकी वंश का राज हुआ वह क्रम इस प्रकार हैः-

सोलंकी वंश के राजा

8. मूलराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 998 से 1053 तक	कुल 55 वर्ष
9. चामुंडराय सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1053 से 1066 तक	कुल 13 वर्ष
10. वल्लभराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1066 से 1066 ।। तक	कुल 6 मास
11. दुर्लभराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1066।। से 1078 तक	कुल 11½ वर्ष
12. भीमराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1078 से 1120 तक	कुल 42 वर्ष
13. करणराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1120 से 1150 तक	कुल 30 वर्ष
14. जयसिंह सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1150 से 1199 तक	कुल 49 वर्ष
15. कुमारपाल सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1199 से 1230 तक	कुल 31 वर्ष
16. अजयपाल सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1230 से 1266 तक	कुल 36 वर्ष
17. मूलराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1266 से 1274 तक	कुल 8 वर्ष

सोलंकी वंश के राजाओं ने 276 वर्ष तक राज्य किया, बाद में पाटण का राज बाघल–वंश के हस्तगत हुआ। उन्होंने विक्रम सं. 1358 तक कुल 84 वर्ष राज्य किया, फिर पाटण की प्रभुता आर्यों के हाथों से मुसलमानों के अधिकार में चली गई।

1. इसी प्रकार **पं. गौरीशंकरजी ओझा** ने स्वरचित 'सिरोही राज के इतिहास' में लिखा है कि पाटण में राजा **'दुर्लभ का राज वि. सं. 1066 से 1078 तक रहा'** बाद में राजा भीम देव पाटण का राजा हुआ।
2. पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ ने 'भारतवर्ष का प्राचीन राजवंश' नामक किताब में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज 1066 से 1078 तक रहा।
3. गुर्जरवंश भूपावली में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. 1078 तक रहा।
4. आचार्य मेरुतुंग रचित 'प्रबन्ध चिन्तामणि' नामक ग्रंथ में भी लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. 1066 से 1078 तक रहा।

इत्यादि इस विषय में अनेक प्रमाण विद्यमान हैं पर ग्रंथ बढ़ जाने के भय से नमूने के तौर पर उपरोक्त प्रमाण लिख दिए हैं, **इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि पाटण में दुर्लभ का राज वि.सं. 1066 से 1078 तक ही रहा था। तब राजा दुर्लभ की राजसभा में वि. सं. 1080 में जिनेश्वरसूरिजी का शास्त्रार्थ कैसे हुआ होगा ?**

प्रभावक चरित्र का उल्लेख

प्रभाचंद्रसूरिजी द्वारा रचित **'प्रभावक चरित्र' (सं. 1334)** एक ऐतिहासिक ग्रंथ है, जिसे सभी गच्छ प्रामाणिक मानते हैं।उसमें दिये गये 'अभयदेवसूरि प्रबन्ध' में जिनेश्वरसूरिजी का भी वर्णन दिया है। उसमें उनका पाटण जाना तथा कुशलता पूर्वक वसतिवास वाले साधुओं के विहार की अनुमति प्राप्त करने का विस्तृत वर्णन भी दिया है, परंतु **उसमें न तो 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का उल्लेख है और न ही राजसभा में किसी वाद के होने का निर्देश है।** उसमें केवल सुविहित साधुओं के विहार की अनुमति प्राप्ति का ही उल्लेख है।

पूरा संदर्भ ग्रंथ इस प्रकार है :–

ज्ञात्वौचित्यं च सूरित्वे, स्थापितौ गुरुभिश्च तौ।
शुद्धवासो हि सौरभ्य, वासंसमनुगच्छति।।42।।

जिनेश्वरस्ततःसूरिरपरोबुद्धिसागरः।
नामभ्यां विश्रुतौ पूज्यै र्विहारेऽनुमतौ तदा।।43।।

ददे शिक्षेति तैः, श्रीमत्पत्तने **चैत्यसूरिभिः**।
विघ्नं सुविहितानां, स्यात्तत्रावस्थानवारणात्।।44।।

युवाभ्यामपनेतव्यं, शक्त्या बुद्ध्या च तत्किल।
यदिदानींतने काले, नास्ति प्राज्ञो भवत्समः।।45।।

अनुशास्तिं प्रतीच्छाव, इत्युक्त्वा गूर्जरावनौ।
विहरन्तौ शनैः, **श्रीमत्पत्तनं** प्रापतुर्मुदा।।46।।

सद्गीतार्थपरीवारौ, **तत्र भ्रान्तौ गृहे गृहे**।
विशुद्धोपाश्रयालाभाद्वाचं, सस्मरतुर्गुरोः।।47।।

श्रीमान् दुर्ल्लभराजाख्यस्तत्र चासीद्विशांपतिः।
गीष्पतेरप्युपाध्यायो, नीतिविक्रमशिक्षणे(णात्)।।48।।

श्री सोमेश्वरदेवाख्यस्तत्र, चासीत्पुरोहितः।
तद्गेहे जग्मतुर्युग्मरुपौ, सूर्यसुताविव।।49।।

तद्द्वारे चक्रतुर्वेदोच्चारं, संकेतसंयुतौ।

तीर्थं सत्यापयन्तौ च, ब्राह्मं पैत्र्यंच दैवतम्।।50।।

चतुर्वेदीरहस्यानि, सारिणीशुद्धिपूर्वकम्।
व्याकुर्वन्तौ सशुश्राव, देवतावसरे ततः।।51।।

तद्ध्वानध्याननिर्मग्नचेताःस्तम्भितवत्तदा।
समग्रेन्द्रियचैतन्यं, श्रुत्योरिव स नीतवान्।।52।।

ततो भक्त्या निजं, बन्धुमाप्यायवचनामृतैः।
आह्वानाय तयोः, प्रैषीत्प्रेक्षाप्रेक्षी द्विजेश्वरः।।53।।

तौ च दृष्ट्वाऽन्तरायातौ, दध्यावम्भोजभूः किमु?।
द्विधाभूयाद (?) आदत्त, दर्शनं शस्यदर्शनम्।।54।।

हित्वा भद्रासनादीनि, तद्दत्तान्यासनानि तौ।
समुपाविशतां शुद्धस्वकम्बलनिषद्ययोः।।55।।

वेदोपनिषदां जैनश्रुत, तत्त्वगिराँतथा।
वाग्भिः साम्यं प्रकाश्यैतावभ्यधत्तां तदाशिषम्।।56।।

तथाहि–''अपाणिपादोह्यमनोग्रहीता।
पश्यत्यचक्षुःसश्रृणोत्यकर्णः।।
स वेत्ति विश्वं, न हि तस्यवेत्ता।
शिवो ह्यरूपी स जिनोऽवताद्वः।।57।।

ऊचतुश्चानयोःसम्यगवगम्यार्थसंग्रहम्।
दययाऽभ्यधिकं जैनं, तत्रावामाद्रियावहे।।58।।

युवामवस्थितौ कुत्रेत्युक्ते, तेनोचतुश्च तौ।
न कुत्रापि स्थितिश्चैत्यवासिभ्यो लभ्यते यतः।।59।।

चन्द्रशालां निजां चन्द्रज्योत्सनानिर्मलमानसः।
स तयोरार्प्पयत्तत्र, तस्थतुस्सपरिच्छदौ।।60।।

द्वाचत्वारिंशताभिक्षा, दोषैर्मुक्तमलोलुपैः।
नवकोटिविशुद्धंचायातं, भैक्ष्यमभुञ्जताम्।।61।।

मध्याह्नियाज्ञिकस्मार्त्त, दीक्षितानग्निहोत्रिणः।
आहूय दर्शितौ तत्र, निर्व्यूढौ तत्परीक्षया।।62।।

यावद्विद्याविनोदोऽयं, विरञ्चेरिव पर्षदि।
वर्त्तते तावदाजग्मुर्नियुक्ताश्चैत्यमानुषाः।।63।।

ऊचुश्च ते झटित्येव, गम्यतांनगराद्बहिः।
अस्मिन्न लभ्यते स्थातुं, चैत्यबाह्यसिताम्बरैः।।64।।

पुरोधाःप्राह निर्णेयमिदं भूपसभान्तरे।
इति गत्वा निजेशानमिदमाख्यातभाषितम्।।65।।

इत्याख्याते च तैः सर्वैःसमुदायेन भूपतिः।
वीक्षितःप्रातरायासीत्तत्र, सौवस्तिकोऽपि सः।।66।।

व्याजहाराथ देवास्मद्गृहेजैनमुनी उभौ।
स्वपक्षेस्थानमप्राप्नुवन्तौ, संप्रापतुस्ततः।।67।।

मया च गुणगृह्यत्वात्, स्थापितावाश्रये निजे।
भट्टपुत्राअमीभिर्मे, ग्रहिताश्चैत्यपक्षिभिः।।68।।

अत्रादिशत मे क्षूणं, दण्डं वाऽत्र यथार्हतम्।
श्रुत्वेत्याह स्मितं कृत्वा, भूपालः समदर्शनः।।69।।

मत्पुरे गुणिनोऽकस्माद्देशान्तरत आगताः।
वसन्तः केन वार्यन्ते?, को दोषस्तत्र दृश्यते?।।70।।

अनुयुक्ताश्च ते चैवं, प्राहुः शृणु महीपते!।
पुरा श्रीवनराजाऽभूत्, चापोत्कटवरान्वयः।।71।।

स बाल्ये वर्द्धितः श्रीमद्देवचन्द्रेण सूरिणा।
नागेन्द्रगच्छभूद्धारप्राग्वराहोपमास्पृशा।।72।।

पंचासराभिधस्थानस्थितचैत्यनिवासिना।
पुरं स च निवेश्येदमत्र, राज्यं दधौ नवम्।।73।।

वनराजविहारंच, तत्रास्थापयत प्रभुं।
कृतज्ञत्वादसौ तेषां, गुरुणामर्हणं व्यधात्।।74।।

व्यवस्था तत्र चाकारि, सङ्घेन नृपसाक्षिकम्।
संप्रदायविभेदेन, लाघवं न यथा भवेत्।।75।।

चैत्यगच्छयतिव्रातसम्मतो वसतान्मुनिः।

नगरे मुनिभिर्नात्र, वस्तव्यं तदसम्मतैः।।76।।

राज्ञां व्यवस्था पूर्वेषां, पाल्या पाश्चात्यभूमिपैः।
यदादिशसि तत्कार्य्यं, राजन्नेवं स्थिते सति।।77।।

राजा प्राह समाचारं, प्राग्भूपानां वयं दृढ़म्।
पालयामो गुणवतां, पूजांतूल्लङ्घयेम न।।78।।

भवादृशां सदाचारनिष्ठानामाशिषा नृपाः।
एधंते युष्मदीयं तद्राज्यं नात्रास्तिसंशयः।।79।।

''उपरोधेन''नो यूयममीषां वसनं पुरे।
अनुमन्यध्वमेवं च, श्रुत्वा तेऽत्र तदादधुः।।80।।

सौवस्तिकस्ततःप्राह, स्वामिन्नेषामवस्थितौ।
भूमिः काप्याश्रयस्यार्थं, श्रीमुखेन प्रदीयताम्।।81।।

तदा समाययौ तत्र, शैवदर्शनिवासवः।
ज्ञानदेवाभिधःक्रूरसमुद्रविरुदार्हतः।।82।।

अभ्युत्थाय समभ्यर्च्य, निविष्टं निज आसने।
राजा व्यजिज्ञपत्किंचिदथ (द्य प्र.) विज्ञप्यते प्रभो!।।83।।

प्राप्ता जैनर्षयस्तेषामर्प्पयध्वमुपाश्रयम्।
इत्याकर्ण्य तपस्वीन्द्रः, प्राह प्रहसिताननः।।84।।

गुणिनामर्चनां यूयं, कुरुध्वं विधुतैनसम्।
सोऽस्माकमुपदेशानां, फलपाकः श्रियां निधिः।।85।।

शिव एव जिनो, बाह्यत्यागात्परपदंस्थितः।
दर्शनेषु विभेदोहि, चिह्नं मिथ्यामतेरिदम्।।86।।

निस्तुषव्रीहिहट्टानां, मध्येऽत्र (त्रि प्र.) पुरुषाश्रिता।
भूमिः पुरोधसा ग्राह्योपाश्रयाय यथारुचि।।87।।

विघ्नः स्वपरपक्षेभ्यो, निषेध्यःसकलो मया।
द्विजस्तच्च प्रतिश्रुत्य, तदाश्रयमकारयत्।।88।।

ततःप्रभृति संजज्ञे, वसतीनां परम्परा।
महद्भिः स्थापितं वृद्धिमश्नुते नात्र संशयः।।89।।

श्रीबुद्धिसागरसूरिश्चक्रे व्याकरणं नवम्।
सहस्राष्टकमानं तच्छ्रीबुद्धिसागराभिधम्।।90।।

अन्यदा विहरन्तश्च, श्रीजिनेश्वरसूरयः।
पुनर्द्धारापुरीं प्रापुः, सपुण्यप्राप्यदर्शनाम्।।91।।

भावार्थ – आचार्य वर्धमानसूरि ने जिनेश्वर व बुद्धिसागर को योग्य समझकर सूरि पद दिया और उनको आज्ञा दी कि पाटण में चैत्यवासी आचार्य सुविहितों को आने नहीं देते हैं,अतः तुम जाकर सुविहितों के ठहरने का द्वार खोल दो। गुरु-आज्ञा शिरोधार्य कर जिनेश्वरसूरि एवं बुद्धिसागरसूरि विहार कर क्रमशः पाटण पहुँचे घर घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिये उपाश्रय नहीं मिला। उस समय पाटण में राजा दुर्लभ राज करता था और सोमेश्वर नाम का राजपुरोहित भी वहाँ रहता था। दोनों मुनि चलकर उस पुरोहित के यहाँ आये और आपस में वार्तालाप होने से पुरोहित ने उनका सत्कार कर ठहरने के लिये अपना मकान दिया क्योंकि जिनेश्वरसूरि एवं बुद्धिसागरसूरि जाति के ब्राह्मण थे। अतः ब्राह्मण का सत्कार करे यह स्वाभाविक बात है।

इस बात का पता जब चैत्यवासियों को लगा तो उन्होंने अपने आदमियों को पुरोहित के मकान पर भेजकर साधुओं को कहलाया कि इस नगर में चैत्यवासियों की आज्ञा के बिना कोई भी श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं अतः तुम जल्दी से नगर से चले जाओ इत्यादि। आदमियों ने जाकर सब हाल जिनेश्वरसूरि आदि को सुना दिया। इस पर पुरोहित सोमेश्वर ने कहा कि मैं राजा के पास जाकर निर्णय कर लूँगा आप अपने मालिकों को कह देना। उन आदमियों ने जाकर पुरोहित का संदेश चैत्यवासियों को सुना दिया। इस पर वे सब लोग शामिल होकर राजसभा में गये। **इधर पुरोहित ने भी राजसभा में जाकर कहा कि मेरे मकान पर दो श्वेताम्बर साधु आये हैं मैने उनको गुणी समझकर ठहरने के लिये स्थान दिया है। यदि इसमें मेरा कुछ भी अपराध हुआ हो तो आप अपनी इच्छा के अनुसार दंड दें।**

चैत्यवासियों ने राजा वनराज चावड़ा और आचार्य देवचंद्रसूरि का इतिहास सुनाकर कहा कि 'आपके पूर्वजों से यह मर्यादा चली आई है कि पाटण में चैत्यवासियों के अलावा श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकेगा। अतः उस मर्यादा का आपको भी पालन करना चाहिये' इत्यादि।

इस पर राजा ने कहा कि मैं अपने पूर्वजों की मर्यादा का दृढ़ता पूर्वक पालन

करने को कटिबद्ध हूँ पर आपसे इतनी प्रार्थना करता हूँ कि मेरे नगर में कोई भी गुणीजन आ निकले तो उनको ठहरने के लिये स्थान तो मिलना चाहिये। अतः आप इस मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें? चैत्यवासियों ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

जब चैत्यवासियों ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली तब उस अवसर को पाकर पुरोहित ने राजा से प्रार्थना की कि हे राजन् ! इन साधुओं के मकान के लिये कुछ भूमि प्रदान करावें कि इनके लिये एक उपाश्रय बना दिया जाय? उस समय एक शैवाचार्य्य राजसभा में आया हुआ था। उसने भी पुरोहित की प्रार्थना को मदद दी। अतः राजा ने भूमिदान दिया और पुरोहित ने उपाश्रय बनाया जिसमें जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया। बाद चातुर्मास के जिनेश्वरसूरि विहार कर धारानगरी की ओर पधार गये।

इस उल्लेख से पाठक स्वयं जान सकते हैं कि जिनेश्वरसूरि पाटण जरुर पधारे थे पर न तो वे राजसभा में गये न चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और न राजा ने खरतर बिरुद ही दिया। इस लेख से स्पष्ट पाया जाता है कि राजसभा में केवल सोमेश्वर पुरोहित ही गया था और उसने राजा से भूमि प्राप्त कर जिनेश्वरसूरि के लिये उपाश्रय बनाया। जिसमें जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया और चातुर्मास के बाद विहार कर धारा नगरी की ओर पधार गये।

सम्यक्त्व सप्ततिका की टीका का उल्लेख

सूरिपुरंदर हरिभद्रसूरिजी रचित 'सम्यक्त्व सप्ततिका' ग्रंथ की टीका **रुद्रपल्लीय गच्छ के संघतिलकसूरिजी ने सं. 1442 में रची थी।** उस ग्रंथ की 26वीं गाथा की टीका में प्रसंगोपात जिनेश्वरसूरिजी की कथा भी दी है। उसमें भी जिनेश्वरसूरिजी का पाटण जाना एवं सुविहित मुनियों के विहार की अनुमति की बात लिखी है, परंतु **राजसभा में चैत्यवासिओं से वाद और 'खरतर' बिरुद की प्राप्ति का कोई निर्देश नहीं किया है।**

संदर्भ ग्रंथ इस प्रकार है-

''जिणिसरसूरी तह बुद्धिसायरो गणहरो दुवे कइया।
सिरिवद्धमाणसूरिहिं एवमेए समाइट्ठा।।43।।

वच्छा! गच्छह अणहिल्लपट्टणे संपयं जओ तत्थ।
सुविहियजइप्पवेसं, चेइयमुणिणो निवारंति।।44।।

सत्तीए बुद्धीए, सुविहियसाहूण तत्थ य पवेसो।
कायव्वो तुम्ह समो, अन्नो नहु अत्थि कोऽवि विऊ।।45।।

सीसे धरिऊण गुरूणमेयमाणं कमेण ते पत्ता।
गुज्जरधरावयंसं, अणहिल्लभिहाणयं नयरं।।46।।

गीयत्थमुणिसमेया, भमिया पइमंदिरं वसहिहेउं।
सा तत्थ नेव पत्ता, गुरुण तो सुमरियं वयणं।।47।।

तत्थ य दुल्लहराओ, राया रायव्व सव्वकलकलिओ।
तस्स पुरोहियसारो, सोमेसरनामओ आसि।।48।।

तस्स घरे ते पत्ता, सोऽविहु तणयाण वेयअज्झयणं।
कारेमाणो दिट्ठो, सिट्ठो सूरिप्पहाणेहिं।।49।।

सुणु वक्खाणं वेयस्स, एरिसं सारणीइ परिसुद्धं।
सोऽवि सुणंतो उप्फुल्ललोयणो विम्हिओ जाओ।।50।।

किं बम्हा रूवजुयं, काऊणं अत्तणो इह उइन्नो।
इय चिंततो विप्पो, पयपउमं वंदइ तेसिं।।51।।

सिवसासणस्स जिण-सासणस्स सारक्खरं गहेऊणं।

इय आसीसा दिन्ना, सूरीहिं सकज्जसिद्धिकए।।52।।

अपाणिपादो ह्यमनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न हि तस्य वेत्ता, शिवो ह्यरूपी स जिनोऽवताद्वः।।53।।

तो विप्पो ते जंपइ, चिट्ठह गुट्ठी तुमेहि सह होइ।
तुम्ह पसाया वेयत्थपारगा हुंति दुसुया मे ।।54।।

ठाणाभावा अम्हे चिट्ठामो कत्थ इत्थ तुह नयरे?
चेइयवासियमुणिणो, न दिंति सुविहियजणे वसिउं।।55।।

तेणवि सचंदसालाउवरिं ठावित्तु सुद्धअसणेणं।
पडिलाहिय मज्झण्हे, परिक्खिया सव्वसत्थेसु।।56।।

तत्तो चेइयवासिसुहडा तत्थागया भणन्ति इमं।
नीसरह नयरमज्झा, चेइयबज्झो न इह ठाइ।।57।।

इय वुत्तंतं सोउं, रण्णो पुरओ पुरोहिओ भणइ।
रायावि सयलचेइयवासीणं साहए पुरओ।।58।।

जइ कोऽवि गुणट्ठाणं, इमाण पुरओ विरूवयं भणिही।
तं नियरज्जाओ फुडं, नासेमी सकिमिभसणुव्व।।59।।

रण्णो आएसेणं, वसहिं लहिउं ठिया चउम्मासिं।
तत्तो सुविहियमुणिणो, विहरंति जहिच्छियं तत्थ।।60।।"

भावार्थ – वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि को हुक्म दिया कि तुम पाटण जाओ कारण पाटण में चैत्यवासियों का जोर है कि वे सुविहितों को पाटण में आने नहीं देते हैं, अतः तुम जा कर सुविहितों के लिए पाटण का द्वार खोल दो। बस गुरुआज्ञा स्वीकार कर जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि क्रमशः विहार कर पाटण पधारे। वहाँ प्रत्येक घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिए स्थान नहीं मिला उस समय उन्होने गुरु के वचन को याद किया कि वे ठीक ही कहते थे कि पाटण में चैत्वासियों का जोर है । खैर उस समय पाटण में राजा दुर्लभ का राज था और उनका राजपुरोहित सोमेश्वर ब्राह्मण था। दोनों सूरि पुरोहित के वहाँ गये। परिचय होने पर पुरोहित ने कहा कि आप इस नगर में विराजें। इस पर सूरिजी ने कहा कि तुम्हारे नगर में ठहरने को स्थान ही नहीं मिलता फिर हम कहाँ ठहरें? इस हालत में पुरोहित ने अपनी चन्द्रशाला खोल दी कि वहाँ जिनेश्वरसूरि ठहर गये। यह व्यतिकर

चैत्यवासियों को मालूम हुआ तो वे (प्र. च. उनके आदमी) वहाँ जा कर कहा कि तुम नगर से चले जाओ कारण यहाँ चैत्यवासियों की सम्मति बिना कोई श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं। इस पर पुरोहित ने कहा कि मैं राजा के पास जाकर इस बात का निर्णयकर लूँगा। बाद पुरोहित ने राजा के पास जाकर सब हाल कह दिया। उधर से सब चैत्यवासी राजा के पास गये और अपनी सत्ता का इतिहास सुनाया। **आखिर राजा के आदेश से वसति प्राप्त कर जिनेश्वरसूरि पाटण में चतुर्मास किया उस समय से सुविहित मुनि पाटण में यथा इच्छा विहार करने लगे।**

यह उल्लेख जिनेश्वरसूरिजी के अनुयायी ऐसे रुद्रपल्लीय गच्छ के आचार्य सङ्घतिलकसूरिजी का ही है। इसके अवलोकन से पाठक वर्ग स्वयं निर्णय कर सकता है कि **रुद्रपल्लीय गच्छ में भी जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला, ऐसी मान्यता नहीं थी।**

जिनविजयजी के अभिप्राय की समीक्षा

इस विषय में 'ओसवाल वंश' पृ. 33-34 पर जिनविजयजी ने बृहद्वृत्ति, गुर्वावली आदि के आधार से जिनेश्वरसूरिजी के सूराचार्यजी से वाद होने एवं प्रभावक चरित्र में सूराचार्यजी के चरित्र वर्णन में उनके मानभंग के भय से वाद का वर्णन नहीं किये जाने की जो बात लिखी है और जिसका उद्धरण 'खरतरगच्छ का उद्भव' पृ. 33-34 पर दिया है, वह उचित प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि उपर बताये अनुसार 'प्रभावक चरित्र' के अभयदेवसूरि प्रबंध एवं 'सम्यक्त्व सप्ततिका' की टीका में न तो वाद का निर्देश है और न ही खरतर बिरुद की बात है एवं पृ. 37 पर बताये अनुसार ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सूराचार्यजी और जिनेश्वरसूरिजी के वाद की संभावना भी नहीं की जा सकती है।

इतिहास प्रेमी ज्ञानसुन्दरजी म.सा. का ऐतिहासिक प्रमाणों से युक्त अभिप्राय

इतिहासप्रेमी ज्ञानसुन्दरजी म.सा. ने ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार से 'खरतरगच्छ' शब्द के प्रयोग की प्रवृत्ति 14वीं शताब्दी से शुरु होनी बतायी है। देखियेः-

अब आगे चलकर हम सर्वमान्य शिलालेखों का अवलोकन करेंगे कि किस समय में खरतरशब्द का प्रयोग किस आचार्य से हुआ है। इस समय हमारे सामने निम्नलिखित शिलालेख मौजूद हैं-

1. श्रीमान् बाबू पूर्णचंदजी नाहर कलकत्ता वालों के संग्रह किये हुए 'प्राचीन शिलालेख संग्रह' खण्ड 1-2-3 जिनमें 2592 शिलालेख हैं, जिसमें खरतर गच्छआचार्यों के वि. सं. 1379 से 1980 तक के कुल 665 शिलालेख हैं।

2. श्रीमान् जिनविजयजी सम्पादित 'प्राचीनलेखसंग्रह' भाग दूसरे में कुल 557 शिलालेखों का संग्रह है जिनमें वि. सं. 1412 से 1903 तक के 25 शिलालेख खरतरगच्छ आचार्यों के हैं।

3. श्रीमान् आचार्य विजयेन्द्रसूरि सम्पादित 'प्राचीनलेखसंग्रह' भाग पहिले में कुल 500 शिलालेख हैं उनमें 29 लेख खरतराचार्य के हैं।

4. श्रीमान् आचार्य बुद्धिसागरसूरि संग्रहीत 'धातु प्रतिमा-लेख संग्रह' भाग पहिले में 1523, भाग दूसरे में 1150 कुल 2673 शिलालेख हैं। जिनमें वि. सं. 1252 से 1795 तक के 50 शिलालेख खरतराचार्यों के हैं।

एवं कुल 6322 शिलालेखों में 779 शिलालेख खरतराचार्यों के हैं। अब देखना यह है कि वि. सं. 1252 से खरतराचार्य के शिलालेख शुरु होते हैं। यदि जिनेश्वरसूरि को वि. सं. 1080 में शास्त्रार्थ के विजयोपलक्ष्य में खरतर-बिरुद मिला होता तो इन शिलालेखों में उन आचार्यों के नाम के साथ खरतर-शब्द का प्रचुरता से प्रयोग होना चाहिये था, हम यहाँ कतिपय शिला-लेख उद्धृत करके पाठकों का ध्यान निर्णय की ओर खींचते हैं।

संवत् 1252 ज्येष्ठ वदि 10 श्री महावीरदेव प्रतिमा अश्वराज श्रेयोऽर्थं पुत्र भोजराज देवेन कारिपिता प्रतिष्ठा जिनचंद्र सूरिभिः।।

आ. बुद्धि धातु प्र. ले. सं. लेखांक 930

ये आचार्य किस गच्छ एवं किस शाखा के थे? शिलालेख में कुछ भी नहीं लिखा है।

'संवत् 1281 वैशाख सुदि 3, शनौ पितामह श्रे. साम्ब पितृ श्रे. जसवीर मातृ लाष एतेषां श्रेयोऽर्थं सुत गांधी गोसलेन बिंबं कारितं प्रतिष्ठितश्च श्री चन्द्रसूरि शिष्यः श्री जिनेश्वर सूरिभिः।।'

आ. बु. धातु ले. सं. लेखांक 627

ये आचार्य शायद जिनपतिसूरि के पट्टधर हो,इनके समय तक की खरतर शब्द का प्रयोग अपमान बोधक होने से नहीं हुआ था।

'सं. 1351 माघ वदि 1 श्रीप्रल्हादनपुरे श्रीयुगादि देवविधि चैत्य श्रीजिन-प्रबोधसूरि शिष्य श्री जिनचंद्र सूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरि मूर्ति प्रतिष्ठा कारिता रामसिंह सुताभ्यां सा. नोहा कर्मण श्रावकाभ्यां स्वामातृ राई मई श्रेयोऽर्थं।'

आ. बु. धातु ले. सं. लेखांक 734

ये आचार्य जिनदत्तसूरि के पाँचवे पट्टधर थे। इनके समय तक भी खरतर शब्द को गच्छ का स्थान नहीं मिला था।

'ॐ सम्वत् 1379 मार्ग. वदि 5, प्रभु जिनचंद्रसूरि शिष्यैः श्रीकुशलसूरिभिः श्रीशान्तिनाथ बिंबं प्रतिष्ठित कारितश्च सा. सहजपाल पुत्रैः सा. धाधल गयधर थिरचंद्र सुश्रावकैः स्वपितृ पुण्ययार्थं।।'

बाबू पूर्ण खण्ड तीसरा लेखांक 2389

'ॐ सं. 1381 वैशाख वदि 5 श्री पत्तने श्री शांतिनाथ विधि चैत्ये श्री जिनचंद्रसूरि शिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिः श्री जिनप्रबोधसूरिमूर्तिप्रतिष्ठा कारिता च सा. कुमारपाल रतनैः सा. महणसिंह सा. देपाल सा. जगसिंह सा. मेहा सुश्रावकैः सपरिवारैः स्वश्रेयोऽर्थम्।।'

बाबू पूर्ण खण्ड दूसरा लेखांक 1988

'सम्वत् 1391 मा. श्री. 15 खरतरगच्छीय श्री जिनकुशलसूरिशिष्यैः जिनपद्मसूरिभिः श्री पाश्वनार्थ प्रतिमा प्रतिष्ठिता कारिता च भव. बाहिसुतेन रत्नसिंह पुत्र आल्हानादि परिवृतेन स्वपितृ सर्व पितृव्य पुण्यार्थं।।'

बाबू पूर्ण खण्ड दूसरा लेखांक 1926

'सं. 1399 भ. श्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिः श्रीपार्श्वनाथ बिंबं प्रतिष्ठितं कारितंच सा. केशवपुत्र रत्न सा. जेहदु सु श्राविकेन पुण्यार्थं।'

बाबू पूर्ण खण्ड दूसरा लेखांक 1545

वह आचार्य-जिनदत्त सूरि के छठे पट्टधर हुए हैं।

पूर्वोक्त शिलालेखों से पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि जिनकुशलसूरि के पूर्व किन्हीं आचार्यों के नाम के साथ खरतर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ पर जिनकुशल सूरि के कई शिलालेखों में खरतर शब्द नहीं है और कई लेखों में खरतरगच्छ का प्रयोग हुआ है, **इससे यह स्पष्ट पाया जाता है कि खरतर शब्द गच्छ के रूप में जिनकुशलसूरि के समय अर्थात् विक्रम की चौदहवीं शताब्दी ही में परिणत हुआ है।** इसका अभिप्राय यह है कि खरतर शब्द न तो राजाओं का दिया हुआ बिरुद है और न कोई गच्छ का नाम है। **यदि वि. सं. 1080 में जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ के विजय में राजादुर्लभ ने खरतरबिरुद दिया होता तो करीब 300 वर्षों तक यह महत्त्वपूर्ण बिरुद गुप्त नहीं रहता।** विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छाचार्यों की यह मान्यता थी कि खरतरगच्छ के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही थे। और यही उन्होंने शिलालेखों में लिखा है। यहाँ एक शिलालेख इस बारे में नीचे उद्धृत करते हैं।

'सम्वत् 1536 वर्षे फागुणसुदि 5 भौमवासरे श्री उपकेशवंशे छाजहड़गोत्रे मंत्रि फलधराऽन्वये मं. जूठल पुत्र मकालू भा. कर्म्मादि पु. नयणा भा. नामल दे ततोपुत्र मं. सीहा भार्यया चोपड़ा सा. सवा पुत्र स. जिनदत्त भा. लखाई पुत्र्या स्नाविका अपुरव नाम्न्या पुत्र समधर समरा संदू संही तया स्वपुण्यार्थ श्रीआदिदेव प्रथम पुत्ररत्न प्रथम चक्रवर्ति श्री भरतेश्वरस्य कायोत्सर्ग स्थितस्य प्रतिमाकारिता प्रतिष्ठिता **खरतरगच्छमण्डन श्री जिनदत्तसूरि,** श्री जिनचंद्रसूरि, श्री जिनकुशल सूरि संतानीय श्री जिनचन्द्रसूरि पं. जिनेश्वरसूरि शाखायां श्रीजिनशेखरसूरि पट्टे श्रीजिनधर्मसूरि पट्टाऽलंकार श्रीपूज्य श्री जिनचन्द्रसूरिभिः'

बा.पू. सं. लेखांक 2401

इस लेख में पाया जाता है कि **सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छ के आदि पुरुष जिनेश्वरसूरि नहीं पर जिनदत्तसूरि ही माने जाते थे।**

(-खरतरमतोत्पत्ति भाग-1, पृ. 16-20)

निष्पक्ष इतिहासकार पं. कल्याणविजयजी का ऐतिहासिक उपसंहार

इतिहास साधन होने के कारण हमने तपागच्छ, खरतरगच्छ, आंचलगच्छ आदि की यथोपलब्ध सभी पट्टावलियों तथा गुर्वावलियाँ पढ़ी हैं और इससे हमारे मन पर जो असर पड़ा है उसको व्यक्त करके इस लेख को पूरा कर देंगे।

वर्तमानकाल में खरतरगच्छ तथा आंचलगच्छ की जितनी भी पट्टावलियां हैं, उनमें से अधिकांश पर कुल गुरुओं की बहियों की प्रभाव है, विक्रम की दशवीं शती तक जैन श्रमणों में शिथिलाचारी साधुओं की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि उनके मुकाबले में सुविहित साधु बहुत ही कम रह गये थे। शिथिलाचारियों ने अपने अड्डे एक ही स्थान पर नहीं जमाये थे, उनके बड़ेरे जहाँ-जहाँ फिरे थे, जहाँ-जहाँ के गृहस्थों को अपना भाविक बनाया था, उन सभी स्थानों में शिथिलाचारियों के अड्डे जमे हुए थे, जहाँ उनकी पौषधशालाएँ नहीं थीं वहाँ अपने गुरु-प्रगुरुओं के भाविकों को सम्हालने के लिये जाया करते थे, जिससे कि उनके पूर्वजों के भक्तों के साथ उनका परिचय बना रहे, गृहस्थ भी इससे खुश रहते थे कि हमारे कुलगुरु हमारी सम्हाल लेते हैं, उनके यहाँ कोई भी धार्मिक कार्य प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, संघ आदि का प्रसंग होता, तब वे अपने कुलगुरुओं को आमन्त्रण करते और धार्मिक विधान उन्हीं के हाथ से करवाते, धीरे-धीरे वे कुलगुरु परिग्रहधारी हुए; वस्त्र, पात्र के अतिरिक्त द्रव्य की भेंट भी स्वीकारने लगे, तबसे कोई गृहस्थ अपने कुलगुरु को न बुलाकर दूसरे गच्छ के आचार्य को बुला लेता और प्रतिष्ठादि कार्य उनसे करवा लेता तो उनका कुलगुरु बना हुआ आचार्य कार्य करने वाले अन्य गच्छीय आचार्य से झगड़ा करता।

इस परिस्थिति को रोकने के लिए कुलगुरुओं ने विक्रम की 12वीं शताब्दी से अपने-अपने श्रावकों के लिए अपने पास रखने शुरू किये, किस गाँव में कौन-कौन गृहस्थ अपना अथवा अपने पूर्वजों का मानने वाला है उनकी सूचियां बनाकर अपने पास रखने लगे और अमुक-अमुक समय के बाद उन सभी श्रावकों के पास जाकर उनके पूर्वजों की नामावलियाँ सुनाते और उनकी कारकीर्दियों की प्रशंसा करते, तुम्हारे बड़ेरों को हमारे पूर्वज अमुक आचार्य महाराज ने जैन बनाया था, उन्होंने बड़ेरों को हमारे पूर्वज अमुक आचार्य महाराज ने जैन बनाया था, उन्होंने

अमुक 2 धार्मिक कार्य किये थे इत्यादि बातों से उन गृहस्थों को राजी करके दक्षिणा प्राप्त करते।

यह पद्धति प्रारम्भ होने के बाद वे शिथिल साधु धीरे-धीरे साधुधर्म से पतित हो गए और 'कुलगुरु' तथा 'बही वंचों' के नाम से पहिचाने जाने लगे। आज पर्यन्त ये कुलगुरु जैन जातियों में बने रहे हैं, परन्तु विक्रम की बीसवीं सदी से वे लगभग सभी गृहस्थ बन गए हैं, फिर भी कतिपय वर्षों के बाद अपने पूर्वज-प्रतिबोधित श्रावकों को वन्दाने के लिए जाते हैं, बहियाँ सुनाते हैं और भेंट पूजा लेकर आते हैं।

इस प्रकार के कुलगुरुओं की अनेक बहियाँ हमने देखी और पढ़ी हैं उनमें बारहवीं शती के पूर्व की जितनी भी बातें लिखी गई हैं वे लगभग सभी दन्तकथामात्र हैं, इतिहास से उनका कोई सम्बन्ध नहीं, गोत्रों और कुलों की बहियाँ लिखी जाने के बाद की हकीकतों में आंशिक तथ्य अवश्य देखा गया है, **परन्तु अमुक हमारे पूर्वज आचार्य ने तुम्हारे अमुक पूर्वज को जैन बनाया था और उसका अमुक गौत्र स्थापित किया था, इन बातों में कोई तथ्य नहीं होता, गौत्र किसी के बनाने से नहीं बनते, आजकल के गौत्र उनके बड़ेरों के धन्धों रोजगारों के ऊपर से प्रचलित हुए हैं, जिन्हें हम 'अटक' कह सकते हैं।**

खरतरगच्छ की पट्टावलियों में अनेक आचार्यों के वर्णन में लिखा मिलता है कि अमुक को आपने जैन बनाया और उसका यह गौत्र कायम किया, अमुक आचार्य ने इतने लाख और इतने हजार अजैनों को जैन बनाया, इस कथन का सार मात्र इतना ही होता है कि उन्होंने अपने उपदेश से अमुक गच्छ में से अपने सम्प्रदाय में इतने मनुष्य सम्मिलित किए। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की बातों में कोई सत्यता नहीं होती, लगभग आठवीं नवमीं शताब्दी से भारत में जातिवाद का किला बन जाने से जैन समाज की संख्या बढ़ने के बदले घटती ही गई है। इक्का-दुक्का कोई मनुष्य जैन बना होगा तो जातियों की जातियाँ जैन समाज से निकलकर अन्य धार्मिक सम्प्रदायों में चली गई हैं, इसी से तो करोड़ों से घटकर जैन समाज की संख्या आज लाखों में आ पहुँची है।

ऐतिहासिक परिस्थिति उक्त प्रकार की होने पर भी बहुतेरे पट्टावली लेखक अपने अन्य आचार्यों की महिमा बढ़ाने के लिए हजारों और लाखों मनुष्यों को नये जैन बनाने का जो ढिण्ढोरा पीटे जाते हैं। इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता,

इसलिए ऐतिहासिक लेखों प्रबन्धों और पट्टावलियों में इस प्रकार की अतिशयोक्तियों और कल्पित–कहानियों को स्थान नहीं देना चाहिए।

हमने तपागच्छ की छोटी–बड़ी पच्चीस पट्टावलियां पढ़ी हैं और इतिहास की कसौटी पर उनको कसा है, हमको अनुभव हुआ कि **अन्यान्य गच्छों की पट्टावलियों की अपेक्षा से तपागच्छ की पट्टावलियों में अतिशयोक्तियों और कल्पित कथाओं की मात्रा सब से कम है और ऐसा होना ही चाहिए, क्योंकि कच्ची नींव पर जो इमारत खड़ी की जाती है,** इसकी उम्र बहुत कम होती है।

हमारे जैन संघ में कई गच्छ निकले और नामशेष हुए , इसका कारण यही है कि उनकी नींव कच्ची थी, आज के जैन समाज में तपागच्छ, खरतरगच्छ, आंचलगच्छ आदि कतिपय गच्छों में साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकात्मक चतुर्विध जैन संघ का आस्तित्व है, इसका कारण भी यही है कि इनमें वास्तविक सत्यता है। **जो भी सम्प्रदाय वास्तविक सत्यता का प्रतिष्ठित नहीं होते, वे चिरंजीवी भी नहीं होते, यह बात इतिहास और अनुभव से जानी जा सकती है।**

–पं. कल्याणविजयजी गणि

परिशिष्ट-1

खरतरगच्छाधिपति जिनमणिप्रभसूरिजी का पत्र

क्र 870/10

दिनांक 4.8.18
इन्दौर म.प्र.

॥ॐ॥

श्री जैन श्वे खरतरगच्छ संघ के समस्त साधु साध्वी म. एवं
समस्त खरतर गच्छ श्री संघ,
सादर अनुवन्दन / सादर धर्मलाभ।

परमात्मा महावीर की शासन परम्परा अविच्छिन्न रूप से गतिमान् है। वही सुविहित परमात्मा की परम्परा समय-२ पर विविध नाम धारण करती हुई बहती रही। उसी महान् परम्परा ने वि.सं.1075 में दुर्लभ राजा द्वारा आचार्य जिनेश्वरसूरि को दिये गये 'खरतर' बिरुद के आधार पर 'खरतरगच्छ' नाम धारण किया।
यह हम सभी का सौभाग्य है कि हमें ऐसी खरी और सुविहित परम्परा मिली। गुरुदेव की शरण मिली।
इस वर्ष यह सुविहित गच्छ 1000 वर्ष पूर्ण कर रहा है। सहस्राब्दी वर्ष में हमें गच्छ-विकास के अभिनव सोपान तय करने हैं।
पालीताना में हुए सम्मेलन में सभी ने गहन विचार-विमर्श कर पू. महातपस्वी श्री छगनसागरजी म. की पुण्यतिथि श्रावण सुदि ६ को खरतरगच्छ दिवस मनाना तय किया।
यह ध्यान रहे कि यह स्थापना दिवस नहीं है। स्थापना दिवस अज्ञात है। यह दिन हमें गच्छ-दिवस के रूप में आयोजित करना है... मनाना है।
इस वर्ष ता. 16 अगस्त 2018 को यह अवसर उपस्थित हो रहा है। इस दिन विशेष रूप से प्रवचन, नाटिका, प्रतियोगिता, आदि आयोजनों द्वारा गच्छ के इतिहास, पूर्वाचार्यों का जीवन, गच्छ की सुविहित परम्परा का गुणगान पूर्वक विवेचन करें। गच्छ के विधि-विधान व अनुशासन, मर्यादा की विवेचना करें।
अहोभाव व पूर्णश्रद्धा के साथ यह विशिष्ट उत्सव मनाना है।

परिशिष्ट-2
आचार्यश्री जिनपीयुषसागरसूरिजी का पत्र
खरतर विरूद प्राप्ति का कालखण्ड
जिनमणिप्रभ सागरसूरि
समीक्षात्मक – विवेचन
– जिन पीयूषसागर सूरि

आप कहते हैं कि इतिहास में बहुत शोध करनी होती है । शोध के नतीजनत 25 से अधिक प्रामाणिक महापुरूषों के प्रमाण हमें प्राप्त करने में सफलता मिली । प्रामाणिक पुरूषों के द्वारा प्रस्तुत इतिहास में से तथ्य सुस्पष्टता से प्राप्त हो जाते हैं, फिर अनुमान के आलम्बन से उसे निकालने की आवश्यकता नहीं होती । रही बात तटस्थता की तो उपकारी और प्रामाणिक पूर्वजों की बातों का पक्ष लिया जाना उचित है। ''तटस्थता'' शब्द के साथ अन्याय है यदि हम ''अपनी'' बात को मनवाने के लिए उपकारी पुरूषों की बातों को नजरअंदाज कर दें ।

आज की घटना को आज इतिहास नहीं कहा जाता, इतिहास कहा जाता रहा है तो इसका अर्थ यही है कि वह पूर्व में घटित हो चुकी है । और ऐसे इतिहास की विषय-वस्तु पर चर्चा करने से पूर्व अपने चित्त को ना सिर्फ पूर्वाग्रह से दूर रखना होता है बल्कि कदाग्रह से भी दूर रखना होता है ।

आप कहते हैं कि विरोध की मानसिकता से सत्य-तथ्य फलित नहीं हो सकता । किन्तु असत्य को अमान्य करना ही सत्य के साथ न्याय है । ऐतिहासिक मान्य पुरूषों के विचारों को अपने या पराए के तराजू में नहीं तौला जाना चाहिए । इस सम्पूर्ण लेख में जो भी विचार हैं, वे उन महापुरूषों के आलम्बन से ही है । उनके विचारों के समक्ष अपने विचारों की प्रस्तुति का प्रश्न ही कहां खड़ा होता है ।

चाहे दादा गुरूदेव जिनदत्तसूरि रचित गुरू पारतंत्र्य स्तोत्र हो या कवि पल्ह द्वारा 12 वीं शताब्दी में रचित खरतरगच्छ की सबसे प्राचीनतम पट्टावली या फिर दादा जिनदत्तसूरि के शिष्य ब्रह्मचंद गणि द्वारा लिखित स्तुति रूप पट्टावली, इन महापुरूषों के द्वारा संवत् का उल्लेख नहीं किया गया है, उनकी चर्चा का प्रश्न ही कहां उठता है? जिन महापुरूषों ने संवत् का उल्लेख किया है । उनकी चर्चा क्यों नही की गई? ऐसे तटस्थता के पैमाने से सत्य के स्तम्भ स्थापित नही किए जा सकते हैं।

आप कहते हैं संवत् के संबंध में विचार मंथन करना है, और ऐसा आप तब कह रहे हैं जब आपके द्वारा संवत् 1075 के रूप में व्यापक प्रचार किया जा चुका है ।

आप कहते है, दादा जिनदत्तसूरि ने गणधर सार्ध शतक में और जिनपालोपध्याय ने खरतरगच्छ बृहद गुर्वावली में संवत् का उल्लेख नहीं किया है, आप इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए प्रश्नचिन्ह खड़ा करते हैं । जबकि यह बात सर्वविदित है कि स्वयं जिनेश्वरसूरिजी या उनके किसी भी शिष्य ने खरतर विरूद का ही उल्लेख नहीं किया, तो क्या आप खरतर विरूद के प्रति भी ऐसे ही प्रश्न खड़े करेगें? जिन्होनें उल्लेख किया है उनको नकार कर, जिन्होंने उल्लेख नही किया है उनकी चर्चा करना सत्य के साथ अन्याय है ।

आप कहते है कि विक्रम संवत 1080 का उल्लेख ''श्रवण परम्परा'' पर आधारित है । तो प्रश्न

स्वाभाविक है कि श्रवण परम्परा पर आधारित बातों को क्या असत्य माना जाये? यदि श्रवण परम्परा पर आधारित बातों को असत्य माना जाये तो जिनशासन व जिनागमों की नींव हिल जायेगी क्योंकि जिनागम अपने आपमें श्रवण परम्परा पर आधारित हैं, और वांचना के रूप में इसकी प्रतिष्ठा है। आप समर्थन करते हैं इस बात का कि युगप्रधान जिनदत्तसूरि, जिनपालोपाध्याय, सुमतिगणि, प्रभावक चरित्रकार आदि समग्र लेखकों ने संवत् के संबंध में मौन धारण कर ऐतिह्यता यानि ऐतिहासिकता की रक्षा की। तो प्रश्न उठता है मौन रहकर ऐतिहासिकता की रक्षा कैसे संभव है? मौन रहकर ऐतिहासिकता की रक्षा होती तो चतुर्थ दादा गुरूदेव को अभयदेवसूरिजी के खरतरगच्छीय साबित करने के लिए मौन रहना चाहिए था, पर उन्होंने मौन नहीं स्वीकारा। उन्होंने उठते उन प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया एवं शास्त्रार्थ के माध्यम से सत्य की प्रतिष्ठा की। तेरहवीं शताब्दी में हुए जिनपतिसूरि ने छत्तीस बार शास्त्रार्थ कर विजय हासिल किया। इतिहास व सिद्धान्तों की सत्यता की प्रतिष्ठा के लिए मौन रहना था ना? परंतु ऐसा नहीं हुआ। रही बात उपर्युक्त लेखकों की तो उनके समक्ष ऐसे कोई प्रश्न थे ही नहीं।

चिन्तनीय लगता है जब आप उन महापुरूषों के मौन में असावधानी की संभावना को स्वीकार करते हैं। जिन बातों का उन महापुरूषों ने उल्लेख ही नहीं किया तो उसमें असावधानी की संभावना का प्रश्न ही कहाँ उठता है? इस तरह की काल्पनिकता से सत्य का पोषण करना तो सत्य के साथ खिलवाड़ है।

आप कहते हैं कि 17 शताब्दी से पूर्व खरतर विरूद प्राप्ति के संवत् का उल्लेख नहीं है, जिससे आप सिद्ध कर रहे हैं कि विक्रम संवत् 1080 का प्रमाण कर्णोपकर्ण यानि कानों के द्वारा सुनी गई बातों पर आधारित था। तो यह प्रश्न स्वाभाविक है कि वह कान थे किसके? आप और हम किनके कानों पर प्रश्न चिन्ह खड़ा कर रहे है? अपने ही पूर्वजों के? भगवान महावीर की वाणी का संचार कर्णोपकर्ण पर ही आधारित था। आगमों का लिपिबद्ध होना तो शताब्दियों बाद प्रारम्भ हुआ तो क्या आगमों को सुनी-सुनाई (कर्णोपकर्ण) मानकर अप्रमाणिक सिद्ध कर देंगे? यह विडम्बना ही कही जा सकती है कि वांचना देने वाले ही वांचना को अस्वीकार करते है।

खैर, आप आगे लिखते है कि ''आचार्य मेरूतुंगसूरि ने उल्लेख किया कि दुर्लभराजा ने संवत् 1066 से 1078 तक पाटण पर शासन किया था। आपने उससे आगे का उल्लेख क्यों नहीं किया, जिसमें आचार्य मेरूतुंगसूरि ने यह कहा कि दुर्लभराज राज्य भीम को सौंपकर तीर्थयात्रा (काशी) चले गये थे। आपने उन्हें मृत किस आधार पर घोषित कर दिया?

संवत् 1078 में दुर्लभराज की मृत्यु के अप्रमाणिक तथ्य के आधार पर विक्रम संवत् 1080 में दुर्लभराजा की अध्यक्षता में शास्त्रार्थ पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करना तो नितान्त भ्रामक है। इस विषय में प्रामाणिक इतिहासकारों की एकमतता बिना किसी प्रमाण के आपने सिद्ध कर दी, यह किस प्रकार संभव है।

आपने सुप्रसिद्ध इतिहासविद् श्री अगरचंदजी नाहटा के द्वारा श्री जिनहरिसागर सूरिजी को प्रेषित पत्र में विक्रम संवत् 1066 या विक्रम संवत् 1070 में शास्त्रार्थ की घटना को वर्णित करने का उल्लेख किया है, तो प्रश्न उठता है कि आप स्वयं 1066 या 1070 को अस्वीकार कर 1075 को क्यों मान रहे है? आप श्री नाहटाजी की बात का खंडन कर रहे हैं या मंडन कर रहे हैं? उनके दो प्रमाणों का उल्लेख कर, आप स्वयं

उनकी प्रामाणिकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर रहे हैं, क्या ये उचित है?

इसी प्रकार महोपाध्याय विनयसागरजी द्वारा लिखित ''खरतरगच्छ का वृहद इतिहास'' ग्रंथ के आधार पर दुर्लभराज के शासन को विक्रम संवत 1076 तक स्वीकार कर दो चार वर्ष का अंतर माना है, इसके आधार पर भी संवत् 1075 को सत्यापित नहीं किया जा सकता है, यही बात महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागरजी भी समर्थन करते है । रही बात जिनकृपाचन्द्रसूरिजी के समुदायवर्ती मुनि श्री कांतिसागरजी के मन्तव्य की तो उन्होने खरतर विरूद प्राप्त करने का संवत् 1078 निश्चित नहीं किया है, बल्कि संभावना व्यक्त की है । किंतु संवत् 1075 का तो कदापि उल्लेख नहीं किया है ।

प्रश्न यह उठता है कि चाहे आचार्य मेरूतुंगसूरि हो या महोपाध्याय विनयसागरजी, चाहे कांतिसागरजी हो या पद्मश्री विभूषित जिनविजयजी किसी ने भी संवत् 1075 का उल्लेख नहीं किया है, यह आप स्वयं स्वीकार करने के बावजूद संवत् 1075 को मान्य करते है, यह रहस्य उद्घाटन का विषय है ।

इसी प्रकार आपने तपागच्छीय श्री कल्याणविजयजी का मन्तव्य प्रस्तुत किया है, उन्होंने यह संभावना व्यक्त की है कि चालुक्य वंशावली के अनुसार दुर्लभराज का कार्यकाल विक्रम संवत् 1078 तक ही रहा तो संवत् 1080 में शास्त्रार्थ सभा की अध्यक्षता संभव नहीं है । सबसे पहली बात, तथ्यों के समक्ष संभावना को अधिक विश्वसनीय मानना अनौचित्यपूर्ण है । दूसरी बात यदि संभावना को विश्वसनीय माने, तो कह सकते हैं कि राज्य भार को छोड़ने के बाद भी दुर्लभराजा ने सभा की अध्यक्षता की होगी क्योंकि पूर्व में ही कह चुके हैं कि संवत् 1078 में दुर्लभराजा काशी की यात्रा पर गये थे, मृत नहीं हुए ।

इसी प्रकार साध्वी डॉ. स्मितप्रज्ञाश्रीजी ने भी अपने शोध प्रबंध में विक्रम संवत् 1075 का उल्लेख प्रामाणिक ग्रंथ ''गुजरात नो प्राचीन इतिहास'' के आधार पर स्वीकार नहीं किया है ।

इसी प्रकार साध्वी मणिप्रभाश्रीजी के विक्रम संवत् 1074 का वर्णन कर आप स्वयं विक्रम संवत् 1075 के माध्यम से अप्रामाणिक मान रहे हैं, उनके अनुसार सहस्राब्दी गत् वर्ष पूर्ण हो चुका है ।

आपके पत्र के दूसरे खंड में एक नया मोड़ आता है । आप स्वयं जिनेश्वरसूरिजी एवं बुद्धिसागरसूरिजी कृत रचनाओं का उल्लेख करते हैं, जिसमें उन्होंने स्वयं को संवत् 1080 में जालोर रहना कहा है । इससे आप यह सिद्ध करते हैं कि संवत् 1080 में वे जालोर में थे तो उसी वर्ष पाटण में कैसे रहे होंगे? आपने य कल्पना भी प्रस्तुत किया है कि वसतिमार्ग का अद्भूत व अनुठा वातावरण निर्मित हुआ होगा तो जिनेश्वरसूरिजी गुजरात के बजाय राजस्थान क्यों आयेंगे? आपने इसे असंभव कहा ।

पहली बात, क्या संभव था और क्या असंभव था, ये आप और हम निश्चित नहीं कर सकते । आप विगत कुछ वर्षों पूर्व छत्तीसगढ़ से गुजरात, गुजरात से छत्तीसगढ़ और झारखंड, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि क्षेत्रों का हजारों किलोमीटर का सुदीर्घ उग्र विहार अल्पावधि में पूर्ण करते हैं तो मात्र 177 किलोमीटर का जालोर से पाटण का विहार असंभव कैसे है? तथ्यों के समक्ष इस तरह के भ्रामक अनुमान की आवश्यकता क्या? दूसरी बात, विषयानुमान से सिद्ध करना है तो यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके गुरू वर्धमानसूरि जिन्होंने विमलवसही की प्रतिष्ठा करवाई वो गुजरात में रहें हो ।

तीसरी और महत्वपूर्ण बात 1000 वर्ष पूर्व आज की तरह गुजरात और राजस्थान की भौगोलिक सीमाएं नहीं थी – वह राज्य ही आजादी के बाद बने । इतिहास साक्षी है 8 वीं – 9 वीं सदी में जालौर में गुर्जर प्रतिहारों का राज्य था । तात्पर्य है कि तब जालौर गुर्जर प्रांत का हिस्सा था । ऐसे में जिनेश्वरसूरिजी गुजरात छोड़ कर राजस्थान गए, कहना ही भ्रमित करना है ।

आप श्री के द्वारा कथित जालोर चातुर्मास की प्रामाणिकता निराधार है । उन्होंने जालोर में अपने ग्रंथ को सम्पूर्ण करने का उल्लेख किया है, ना कि जालोर चातुर्मास का । साथ ही साथ आप इस बात से भी अनभिज्ञ नहीं है कि ग्रंथ कहाँ शुरू होता है और कहाँ सम्पूर्ण । इसमें एकरूपता का अवकाश बहुलता देखने को मिलता है ।

पत्र के अंत में आपश्री ने एक नये मोड़ में लाकर हम सभी को खड़ा कर दिया । आपने संवत् 2040, गढ़ सिवाना का उल्लेख किया है । गौर फरमाने वाली बात है कि आपश्री को छोड़कर उल्लेखित सभी आचार्य भगवंत, मुनि, साध्वीजी भगवंत देवलोकगमन हो चुके हैं, ऐसे में इसकी प्रामाणिकता सवालों के घेरे में है । उस समय मुनि पूर्णानंदसागरजी (वर्तमान में आचार्य) एवं स्वयं मैं (मुमुक्षु के रूप में) मौजुद थे, हम दोनों के ही संज्ञान में यह बात नहीं आई । विशेषत: गच्छ के उद्भव संबंधी इतनी विशेष चर्चा व विचार विमर्श का प्रचार-प्रसार भी नहीं किया गया और न ही पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया, ऐसा कैसे मुमकिन है? निश्चित ही तथ्यात्मक रूप से यह निराधार है । उन गुरू भगवंतों एवं साध्वीजी के देवलोकगमन पश्चात् उनके नाम से इस प्रकार सम्मति का कोई सवाल ही खड़ा नहीं होता ।

परम् पूज्या प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी म.सा. जिन्हें गढ़सिवाना की तथाकथित वि. सं. 2040/सन् 1983 की चर्चा सभा में उपस्थित बताया, उन्होंने सन् 1991 में 'द्वादश पर्व व्याख्यान' नामक पुस्तक श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ, कोलकाता से प्रकाशित करवाई उसमें स्पष्ट उल्लेख किया खरतर विरूद प्राप्ति संवत् 1080 का । चर्चा में उनकी सहमति या निर्णय हुआ होता तो वह ऐसा प्रकाशित क्यों करवाती? यह भी महत्वपूर्ण प्रमाण है, आपके भ्रामक कथन का ।

हमने पूर्व में भी आपको युगप्रधान आचार्यो से लेकर महोपाध्यायों तक, पट्टावलियों से लेकर प्रशस्तियों तक, और आधुनिक इतिहासज्ञों के मन्तव्य प्रेषित किए थे, जो संवत 1080 के प्रति अपनी सम्मति तथ्यों के आधार पर प्रामाणिक ठहरा रहे हैं । आपने उन तथ्यों को किस आधार पर नजरअंदाज किया? हम सभी को उस पर चिंतन कर प्रामाणिक मानना चाहिए और तत्संबंधी महोत्सव की भव्यातिभव्य तैयारी में मन-वचन-काया के वीर्योल्लास को दिशा देना चाहिए ।

श्री जिनाज्ञा के विरूद्ध कुछ लिखने में आया हो तो मन-वचन-काया से मिच्छामि दुक्कड़म ।

परिशिष्ट-3
खरतरगच्छाधिपति जिनचंद्रसूरिजी का पत्र

Satya Sadhna

37 mins ·

Date - 12-11-2018

Blessings for everyone.

Have a blissful life.

All your efforts and zeal ful organization of the programs for 64th birthday were inspirational and motivating

This day was made even more special by spreading and creating awareness of Satya Sadhna and celebration for Millennium of khartergachh beginning from 6-7 April 2019.

May all of you enlighten your path and that of others also.

My blessings and appreciation

परिशिष्ट-4

खरतरगच्छ के वरिष्ठ श्रावक ललितजी नाहटा का लेख

RNI No. DELMUL/2001/05340 • POSTAL REGISTRATION NO. DL(S)-17/3527/2018-20
"Licence to post without Pre-payment" U(S)-88/2018-19

जिनेश्वर वर्धमान

वर्ष-18, अंक-10, पृष्ठ-8 अक्टूबर, 2018

॥श्री वर्धमान जिनेश्वराय नमः॥

खरतरगच्छ सहस्राब्दी समारोह सम्वत् 2080 को ही

अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ प्रतिनिधि महासभा के संस्थापक संत 'जहाज मंदिर' पत्रिका के 5 सितम्बर, 2018 के अंक में छः पृष्ठ के आलेख 'खरतर विरुद प्राप्त का कालखण्ड' में पत्रिका के पृष्ठ-12 पर वि.सं. 2040 की गढ़ सिवाना प्रतिष्ठा व सप्तम शताब्दी समारोह पर एक मनगढ़ंत चर्चा पर लिखते हैं कि **"इस समारोह में पूज्य आचार्य जिनउदयसागरसूरिजी म., पूज्य आचार्य जिनकांतिसागरसूरिजी म., मुनिश्री महोदयसागरजी म., पूज्य मुनिश्री कैलाशसागरजी म.सा. आदि मुनि मण्डल के साथ-साथ समुदायाध्यक्षा श्री चम्पाश्रीजी म., अविचलश्रीजी म., प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म., साध्वी श्री राजेन्द्रश्रीजी म., हेमप्रभाश्रीजी म. आदि वरिष्ठ साध्वियों की पावन उपस्थिति थी। समारोह में श्री भंवरलालजी नाहटा, श्री विनयसागरजी आदि इतिहास के विशिष्ट विद्वान व्यक्तित्व उपस्थित थे।**

उस समय इस विषय में गहन चर्चा चली थी। निर्णय करते समय इस मत का ध्यान रखा गया कि दुर्लभराजा का शासन 1076 या 1078 तक ही रहा था तथा 1080 में आचार्यद्वय जालोर में विराजमान थे।

सभी स्पष्ट रूप से एक मत थे कि 1080 तो हो ही नहीं सकता, तब उपस्थित आचार्यश्री, मुनि मण्डल, साध्वी मण्डल, इतिहासज्ञों आदि ने सर्वसम्मति से खरतर विरुद की प्राप्ति का वि. 1075 का वर्ष निश्चित किया।"

संस्थापक संत का यह सर्वथा मिथ्या लेखन है, ऐसी कोई चर्चा हुई ही नहीं। आगे की पंक्तियाँ भी

ध्यानार्थ : इस पत्र में प्रकाशित विचारों / समाचारों से सम्पादक / प्रकाशक / **मुद्रक का** सहमत होना आवश्यक नहीं है। वे लेखक / प्रेषक के स्वतंत्र विचार / **समाचार** होते हैं और उसका सम्पूर्ण दायित्व भी उन्हीं का है। आपत्ति इंगित करने पर लेखक या प्रेषक से उसके निवारण के लिए निवेदन किया जा सकता है। पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजी सामग्री को आंशिक या पूर्ण, प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक / प्रकाशक के पास सुरक्षित है। अप्रकाशित सामग्री प्रेषक के पास वापस नहीं भेजी जायेगी। पत्र से संबंधित समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सज्जा एवं शब्द-संयोजन : **राकेश पाण्डेय**

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी **मोहित नाहटा** संजय प्रिंटर्स, 1132-छत्ता मदनगोपाल, दिल्ली-6 से मुद्रित एवं 21, आनन्द लोक, अगस्त क्रांति मार्ग, नई दिल्ली-49 से प्रकाशित। **सम्पादक : मोहित नाहटा**

Printer, Publisher & Owner **Mohit Nahata**
Printed at Sanjay Printers, 1132, Chhatta Madan Gopal, Delhi-110006 & Published at
21, Anand Lok, August Kranti Marg, New Delhi-110049
Tel. : 26251065 Fax: 26265801
e-mail : jineshwarvardhaman@gmail.com
Editor : Mohit Nahata

स्पष्टत: उनके लेखन को मिथ्या प्रमाणित करती है कि **"इसी निर्णय के आधार पर 35 वर्ष पूर्व मेरे द्वारा रचित/निर्मित खरतर चालीसा में वि.सं. 1075 का उल्लेख किया गया था। उस समय प्रकाशित श्री जिनकुशलसूरि सप्तम शताब्दी स्मृति ग्रंथ में यह चालीसा प्रकाशित है।**

उस चालीसा जिसकी रचना वि.2040 में चैत्र सुदि 12 को की थी। उसमें लिखा है-

अर्पण खरतर बिरुद किया है,
परकट भावोल्लास किया है।
सूरि जिनेश्वर घोषित होते,
विजयी विजयी उद्‌घोष प्रकटते॥25॥
संवत् सहस पचोतर वर्षे।
घटना बनी यह सब जन हरसे।
तब से गच्छ हुआ यह खरतर,
शुभ्र सनातन सात्विक खरतर॥26॥
श्री जिनकांतिसूरिश्वर राजे,
सिंहगर्जनावत् वे गाजे।
प्रज्ञापुरुष प्रवर कहलाते,
सुन व्याख्यान सहु हरसाते॥37॥
प्रधान शिष्य तसु दोय हजारे,
चालीसे शुभ सूरजवारे।
चैत्र सुदि बारस दिन आया,
मणिप्रभसागर अति हरसाया॥38॥"

स्पष्ट लिख रहे हैं अपने आलेख व खरतर चालीसा में कि खरतर चालीसा की रचना सं. 2040 चैत्र सुदि 12 अर्थात् दिनांक 24 अप्रैल, 1983 में की, वह भी उस तथाकथित गहन चर्चा के निर्णय के आधार पर। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस तथाकथित गहन चर्चा का हवाला दे रहे हैं उसका समय गढ़सिवाना समारोह में सं. 2040 बैशाख बदि-13 अर्थात् 10 मई, 1983 से सं. 2040 बैशाख सुदि-11 अर्थात् 22.05.1983 के बीच था। स्पष्ट है कि यह भी मिथ्या लेखन है कि समारोह के निर्णय के आधार पर खरतर चालीसा लिखा। खरतर चालीसा की तो गढ़सिवाना समारोह के पूर्व ही रचना कर दी गयी थी।

"उपसंहार-इन सभी प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि शास्त्रार्थ द्वारा खरतर बिरुद की प्राप्ति 1080 से पूर्व ही हुई है। वि.सं. 1075 का निर्णय गढ़ सिवाना में पूज्य गच्छाधिपति आचार्यद्वय मुनिराजों, साध्वीवर्याओं व इतिहासज्ञों की आज से 35 वर्ष पूर्व हुई सर्वसम्मति का परिणाम है।"

सर्वथा मिथ्या व मनगढ़ंत है। गच्छाधिपति आचार्य द्वय लिखना भी सरासर असत्य है। खरतरगच्छ में एक ही गच्छाधिपति होते हैं और उस समय गच्छाधिपति आचार्यश्री जिनउदयसागरसूरिजी म.सा. थे। मात्र खरतर चालीसा में उनके द्वारा हुई भूल को सही करने का असफल प्रयास है। व्यक्ति सहजता व सरलता से अपनी भूल सुधार ले व स्वीकार ले तो और झूठ बोलने की आवश्यकता ही नहीं रहती। उपरोक्त चर्चा ही नहीं हुई जिसका प्रमाण उपस्थित महानुभावों के प्रकाशन से ही स्पष्ट हो जाता है:-

श्री भंवरलालजी नाहटा द्वारा सम्पादित 'कुशल निर्देश' के जून 1983 के अंक में भी इस विषय की कोई चर्चा का उल्लेख नहीं, जबकि उसी अंक में गढ़सिवाना महोत्सव की खबर उन्होंने विस्तारपूर्वक (चार पृष्ठों में) प्रकाशित की। सर्वसम्मति से खरतर विरुद की प्राप्ति का वि.सं. 1075 को वर्ष निश्चित किया होता तो यह समाचार मुख्य रूप से प्रकाशित होता।

परम् पूज्य गच्छाधिपति आचार्य श्री जिनकैलाश सागरसूरिजी के द्वारा संशोधित महासंघ के पंचांग में पिछले 16 वर्ष से खरतर संवत् लिखा जाता रहा था, वो 1080 के हिसाब से है। जिन्हें मुनि अवस्था में वहाँ उपस्थित बताया था। अगर उस चर्चा की कुछ भी सत्यता होती तो आचार्य प्रवर 1075 के हिसाब से लिखते। इसके अलावा महासंघ पंचांग संबंधित संस्थापक संत सहित सभी साधु-साध्वियों एवं गच्छ

के संघों तथा सदस्यों को भेजा जा रहा था एवं उस पर आज तक किसी ने भी अपनी असहमति या आपत्ति नहीं उठाई।

'खरतरगच्छ का बृहद इतिहास' (सन् 2004) ग्रंथ में महोपाध्याय श्री विनयसागरजी ने गढ़सिवाना की चर्चा का उल्लेख क्यों नहीं किया, जबकि उन्हें वहाँ उपस्थित बताया गया है। और तो और इस पुस्तक में 'मंगलम्' के रूप में दो पृष्ठ उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने स्वयं लिखे हैं।

परम् पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म.सा. ने सन् 1991 में 'द्वादश पर्व व्याख्यान' नामक पुस्तक श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ, कोलकाता से प्रकाशित करवाई उसमें स्पष्ट उल्लेख किया खरतर विरुद प्राप्ति संवत् 1080 का।

संस्थापक संत ने संवत् 2040 में जिस तथाकथित गढ़सिवाना की चर्चा का उल्लेख किया है उसमें आपश्री को छोड़कर उल्लेखित सभी आचार्य भगवंत, मुनि, साध्वीजी भगवंत का देवलोक गमन हो चुका है, ऐसे में इसकी प्रमाणिकता सवालों के घेरे में है। अन्य जो उपस्थित थे, जो आज भी विद्यमान हैं, उनका उल्लेख जानबूझ कर नहीं किया कारण झूठ पकड़े जाने के भय से।

आचार्य श्री जिनपीयूषसागरसूरीश्वरजी म.सा. 'समीक्षात्मक विवेचन' में लिखते हैं कि **''उस समय मुनि श्री पूर्णानन्दसागरजी (वर्तमान में आचार्य) एवं स्वयं मैं (मुमुक्षु के रूप में) मौजूद थे, हम दोनों के ही संज्ञान में यह बात नहीं आई। विशेषत: गच्छ के उद्भव संबंधी इतनी विशेष चर्चा व विचार विमर्श का प्रचार-प्रसार भी नहीं किया गया और न ही पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया, ऐसा कैसे मुमकिन है? निश्चित ही तथ्यात्मक रूप से यह निराधार है। उन गुरु भगवंतों एवं साध्वीजी के देवलोकगमन पश्चात् उनके नाम से इस प्रकार सम्मति का कोई सवाल ही खड़ा नहीं होता।''**

आचार्य श्री जिनपूर्णानन्दसागरसूरिजी म.सा. अपने पत्र दिनांक 20.09.2018 में इस पर अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार देते हैं कि **''महरौली अष्टम शताब्दी एवं गढ़सिवाना सप्तम शताब्दी का मैं गुरुदेव की निश्रा में चश्मदीद गवाह रहा हूँ। वहाँ पर इस विषय में कोई चर्चा नहीं हुई।''**

गणाधीश पन्यास विनय कुशल मुनि गणिजी म.सा. ने अपने पत्र दिनांक 21.09.2018 में इस पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं कि **''तर्क के अन्तर्गत आपश्री 2040 के गढ़सिवाना के विचार विमर्श के आधार पर 1075 करने की बात कहते हैं तो पहली बात तो यह है कि इतने वर्षों में इस चर्चा को संघ के समक्ष क्यों नहीं रखा गया?''**

उपरोक्त से आप स्वयं (इस आलेख के पाठक गण) सहजता व सरलता से निर्णय ले सकेंगे की सत्य क्या है? मैंने परम् श्रद्धेय खरतरगच्छ साधु-साध्वी भगवंत को दिये अपने पत्र दिनांक 13 सितम्बर, 2018 (गणेश चतुर्थी, संवत् 2075) के संलग्नक में पूर्ण विश्वास के साथ गढ़सिवाना की सं. 2040 की चर्चा को मनगढंत व मिथ्या बताया जो उपरोक्त कथनों से शत प्रतिशत सही प्रमाणित हुई। खेद की बात है कि प्रतिनिधि महासभा संस्थापक संत इतना सफेद झूठ बोलते हैं। यह भी खेद की बात है कि उनके भक्त श्रावक मेरे सत्य लिखने पर अनर्गल अलाप करते हैं लेकिन उनके सफेद झूठ पर आँखे मूंद लेते हैं अर्थात् उनके सफेद झूठ की अप्रत्यक्ष रूप से अनुमोदना करते हैं व झूठ बोलते रहने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। काश शुरू में ही उनके पहले झूठ को इंगित कर दिया होता तो उनके झूठ का इतना बड़ा पुलिंदा नहीं बनता।

मेरा लिखना संस्थापक संत के श्रावकों को कड़वा लगता है लेकिन असत्य नहीं। मीठा शहद बनाने वाली मधुमक्खी भी डंक मारने से नहीं चूकती,

इसलिये सदैव सतर्क रहें कि मीठा बोलने वाले हनि (Honey-शहद) के साथ हानि भी दे सकते हैं।

हमारे अग्रज आचार्य द्वय व गणाधीश प्रवर अपने समीक्षात्मक विवेचना व पत्रों में अपना निम्न मत स्पष्टता व पूर्ण विश्वास के साथ देते हैं:-

आचार्य श्री जिनपीयूषसागरसूरीश्वरजी म.सा. अपने एक पत्र दिनांक 30.08.2018 मिति वि.सं. 2075, भादवा बदि -5 में लिखते हैं कि **"खतरतरगच्छ के अभ्युदय के विषय में एक नहीं अपितु अनेक इतिहासकारों का स्पष्ट मंतव्य वि.सं. 1080 को ही मान्य कर रहा है। पं. जवाहरलाल नेहरू के द्वारा संस्थापित 'भारतीय विद्या भवन' के द्वारा ईस्वी सन् 1956 में प्रकाशित "Chalukyas of Gujrat" जिसे जाने माने भारतीय इतिहासविद् अशोक कुमार मजुमदार (एम.ए.डी. फिल.) ने वृहद शोध कर लिखा है। उसमें स्पष्ट** उल्लेख है कि 'खरतरगच्छ का उद्‌भव वि.सं. 1080 ही **स्वीकार्य** और मान्य है।' उन्होंने अन्य **इतिहासकारों की अपेक्षा जिनधर्मोपदेष्टा विरतिधरों की बातों को कहीं अधिक प्रमाणिक** माना है। **जिनशासनानुयायी होने के नाते यदि हम स्वयं उन प्रभावक आचार्यों और श्रमणों के द्वारा रेखांकित ऐतिहासिक साक्ष्यों को ना माने तो यह हमारी अक्षम्य भूल ही होगी।**

Paul Dundas (Senior lecturer in Sanskrit & Head of Asian Studies in the University of Edinburgh) से लेकर John R. Hinaello (Professor of Theology at University of Manchester) तक Kristy L. Welley (University of California at Berkeley) से लेकर Helunth Ven Glasenagy (German indologist, Germany) तक सभी वि.सं. 1080 को अभ्युदय वर्ष के रूप में स्वीकार्य कर रहे हैं। इसके साथ-साथ कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य हो या श्री जिनलाभसूरि जी, ऐतिहासिक अष्टलक्षी के कर्त्ता महोपाध्याय समयसुन्दरजी हो या महोपाध्याय क्षमाकल्याणजी, जिनआनन्दसागरजीसूरिजी या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी! चाहे खरतरगच्छ की अनेक पट्टावलियाँ हो या प्रशस्तियाँ, या फिर राजेन्द्र अभिधान कोष सभी वि.सं. 1080 को मान्य कर रहे हैं। अहमदाबाद में चतुर्थ दादागुरुदेव श्री जिनचंद्रसूरिजी म.सा. की निश्रा में प्रतिष्ठित जिनालय के शिलालेख में उत्कीर्ण तथ्य भी स्पष्ट निर्देशित कर रहा है कि खरतरगच्छ का अभ्युदय निरशंक रूप से वि.सं. 1080 ही है। इन प्रमाणों के मध्य क्या Gazzetted प्रमाण की आवश्यकता रहेगी?

एकांतवादियों के नयन उन्मूलक श्रमण श्रेष्ठों से लेकर आधुनिक इतिहासविदों की राय और तदोपदेशित और निर्देशित साक्ष्यों के आधार पर हमें भी खरतरगच्छ का उद्‌भव वि.सं. 1080 स्वीकार कर लेना चाहिये। इस पर किन्तु परन्तु का तो लेश मात्र भी अवकाश स्वीकार्य नहीं है।"

'समीक्षात्मक विवेचन' में आचार्य श्री जिनपीयूष सागरसूरीश्वरजी म.सा. ने अपना स्पष्ट निष्कर्ष दिया कि:- **"हमने पूर्व में भी आपको युगप्रधान आचार्यों से लेकर महोपाध्यायों तक, पट्टावलियों से लेकर प्रशस्तियों तक, और आधुनिक इतिहासज्ञों के मंतव्य प्रेषित किये थे, जो संवत् 1080 के प्रति अपनी सम्मति तथ्यों के आधार पर प्रामाणिक ठहरा रहे हैं। आपने उन तथ्यों को किस आधार पर नजरअंदाज किया? हम सभी को उस पर चिंतन कर प्रामाणिक मानना चाहिये और तत्संबंधी महोत्सव की भव्यातिभव्य तैयारी में मन-वनच-काया के वीर्योल्लास को दिशा देनी चाहिये।"**

आचार्य श्री जिनपूर्णानन्दसागरसूरिजी म.सा. अपने

पत्र दिनांक 20.09.2018 में स्पष्ट निष्कर्ष देते हैं कि :- "उत्पत्ति कब हुई इस विषय में अन्य कुछ माने या न माने पर हमारे परमाराध्य चारों दादा गुरुदेव में से चतुर्थ दादा गुरूदेव जिनकी उपस्थिति में अंकित अहमदाबाद का शिलालेख हमारी समर्पणा के आधार पर हमें तहत्ति कहने को प्रेरित करता है। चूंकि चतुर्थ दादागुरुदेव हमारे श्रद्धास्पद-अराध्य होने के साथ-साथ "युगप्रधान" भी हैं। अतः इन सभी चर्चाओं को विराम देते हुये हमारे परमाराध्य चतुर्थ दादागुरूदेव द्वारा उल्लिखित सं. 1080 को ही स्वीकार्य करके गच्छ-गौरव अनुरूप इस ऐतिहासिक सहस्त्राब्दी समारोह को भव्य स्तर पर मनाना चाहिये-जिससे चतुर्विध संघ का प्रत्येक सदस्य सहभागी एवं सहयोगी बनें। खरतरगच्छ की गौरवशाली एवं प्रखर परम्परा की पुनःस्थापना के लिये पूरे गच्छ-संघ को मिलकर सामूहिक चिन्तन कर यथायोग्य निर्णय लेने चाहिये एवं सभी के द्वारा इनकी अनुपालना सुनिश्चित करना चाहिये।"

गणाधीश पन्यास विनय कुशल मुनि गणिजी म.सा. अपने पत्र दिनांक 21.09.2018 में अपना स्पष्ट निष्कर्ष देते हैं कि:- "आप संवत् 1080 को नहीं मानने का कारण कहते हैं कि दुर्लभराज ने वि.सं. 1066 से वि.सं. 1078 तक पाटण पर शासन किया। इसमें यह कहीं सिद्ध नहीं होता कि दुर्लभ राजा उस समय जीवित नहीं थे, वो राजा के पद पर नहीं थे किन्तु ज्ञानी होने की वजह से पुत्र ने पिता को ही इस धर्मचर्चा में निर्णायक की भूमिका पर बैठाया।

दूसरा तर्क आपश्री ने दिया कि उस समय आचार्य जिनेश्वरसूरि व बुद्धिसागरसूरि जी का चातुर्मास जालोर में था। पाटण से जालोर लगभग 200 कि.मी. है तथा उस समय की भौगोलिक स्थिति के हिसाब से जालोर भी गुर्जर प्रदेश का हिस्सा था। इसलिये मास कल्प के पालन के कारण (क्योंकि वे उत्कर्ष सविग्न साधु थे) पाटण से विहार कर जालोर आये होंगे और वहाँ अन्य साधु भगवंतों को चातुर्मास के लिये भेजा होगा। उस समय क्षेत्र के नाम भी गुजरात-राजस्थान आदि नहीं थे।

क्या वर्तमान के आचार्य साधु-साध्वियों दादागुरुदेव जिनचंद्रसूरिजी, समयसुंदरजी से ज्यादा ज्ञानी हो गये कि उनके बताये संवत् को बदलकर अपनी मतिनुसार तय किये गये संवत् को खरतरगच्छ स्थापना दिवस मनाये। समयसुंदरजी म.सा. जिनकी समाचारी वर्तमान में खरतरगच्छ में निर्विवाद रूप से सभी में आदर सहित स्वीकार्य है किन्तु इस एक बदलाव से भविष्य में उस समाचारी का महत्व भी समाप्त हो जायेगा। वे अत्यंत ज्ञानी महापुरुष थे, ज्यादा गंभीर थे उन्होंने भी सब सोच विचार करके ही संवत् 1080 का उल्लेख प्रस्तुत किया होगा।

यदि हम अंत में बात करें 'श्रवण परम्परा' की तो सम्पूर्ण जैन धर्म 'श्रवण परम्परा' पर ही निर्भर करता है यदि इस श्रवण परम्परा को अमान्य करते हैं तो सभी आगम आदि भी व्यर्थ हो जायेंगे क्योंकि समस्त आगम इत्यादि भगवान के निर्वाण के 980 वर्ष बाद लिखे गये उससे पूर्व वे श्रवण परम्परा पर ही आधारित थे।

सभी प्रमाण संवत् 1080 के पक्ष में हैं तथा ये प्रमाण देने वालों के सामने शेष सभी चाहे वे साधु-साध्वी हों या श्रावक-श्राविका चाहे इतिहासवक्ता हों या ये सभी प्रमाण लिखने वाले पूर्वाचार्यों के समाने सूर्य के सामने जुगनु जैसे हैं। अतः हमारे मतानुसार गच्छ एकता-ऐतिहासिक प्रमाणों को ध्यान में रखते हुये समझदारी का निर्णय लेते हुये इसे 1080 तय करना चाहिये ताकि भविष्य में हमें शर्मिंदा न होना पड़े क्योंकि

1075 के पक्ष में लिखित एक भी प्राचीन प्रमाण नहीं है।''

खरतर संवत् 1080 को माना जाय उस हेतु परम् श्रद्धेय दादागुरु, महो. समयसुन्दर जी, महो. क्षमाकल्याण जी आदि के लेखनों के साथ वर्तमान के आचार्य प्रवर श्री जिनपीयूषसागरसूरीश्वरजी म.सा. का पत्र एवं आलेखों 'खरतरगच्छ का उद्भव' (स्थूलिभद्र संदेश में 2016 व 2018 में प्रकाशित) एवं 'समीक्षात्मक विवेचन', आचार्य प्रवर श्री जिनपूर्णानन्दसागरसूरिजी म.सा. का पत्र दिनांक 20. 09.2018 एवं गणाधीश पन्यास विनय कुशल मुनि गणि म.सा. का पत्र दिनांक 21.09.20018 से उपरोक्त मत पढ़ें, एकदम स्पष्ट हो जायेगा।

कोई भी व्यक्ति झूठ बोलता है तो उसके निम्न कारण होते हैं:- 1. भ्रांतिवश/गलतफहमी से झूठ बोलता है। 2. किसी को बुरा न लगे इसलिये झूठ बोलता है। 3. विवशता के कारण झूठ बोलता है। 4. मौज मस्ती व मजे के लिये झूठ बोलता है। 5. कुछ पाने के लिये झूठ बोलता है। 6. अकारण या आदतन झूठ बोलता है। 7. अपना अपराध या गलती छुपाने के लिये झूठ बोलता है। 8. दूसरों को गलत सिद्ध करने या स्वयं को सही सिद्ध करने के लिये झूठ बोलता है। 9. अपनी ज़िद्द पूरी करने के लिये झूठ बोलता है। झूठ बोलने के अनेकों कारण हो सकते हैं, परन्तु सत्य बोलने का एक ही कारण होता है क्योंकि सत्य तो सत्य ही है। झूठ के भ्रमजाल में फंसकर व्यक्ति अपना सम्मान, विवेक तथा निर्णय क्षमता खो बैठता है।

झूठ तो झूठ ही होता है। जैन धर्म की दृष्टि से गृहस्थ को भी झूठ की छूट नहीं तो संत के लिये तो अक्षम्य अपराध है। जैन संतों के पाँच महाव्रतों में एक महाव्रत सत्य महाव्रत है। संस्थापक संत ने उपरोक्त बिन्दुओं में से किन-किन बिन्दुओं के कारण झूठ बोला होगा इस पर चिन्तन करें।

अकारण विवाद व झूठ बोलने की आदत बहुत पुरानी है। कुछ ही उदाहरण यहाँ दे पाऊँगा:-

- 20/11/2015 को रायपुर से 'समाधान' नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी जिसमें जो उत्तर दिये गये केवल मात्र झूठ का पुलिंदा थे। 'स्थूलिभद्र संदेश' के फरवरी, 2016 अंक में उसका खुलासा किया गया। जिसमें प्रमुख है :-वि. सं. 2000 में आचार्य श्री जिनमणिसागरसूरिजी म.सा. को निष्कासित किया गया, ऐसी मिथ्या बात 'समाधान' नामक पुस्तक में पृष्ठ-24 पर लिखी गई। श्री भंवरलालजी नाहटा के लिये मिथ्या व स्तरहीन शब्दों का प्रयोग किया।

- खरतर दिवस-विवादास्पद निर्णय : मेरे व्यक्तिगत अनुमान से इतिहासज्ञों द्वारा सन् 1024 का उल्लेख इस ओर इशारा करता है कि खरतर बिरुद संभवतया वि.सं. 1080 के चैत्र कृष्ण पक्ष या इससे पूर्व की है। प्रत्येक सन् में चैत्र कृष्ण तक 56 वर्ष व चैत्र शुक्ल से 57 वर्ष का अंतर विक्रम संवत् में आता है। अत: खरतरगच्छ का उद्भव काल 1 जनवरी, 1024 से वि.सं. 1080 चैत्र कृष्णा 15 के मध्य का है। स्पष्टत: वर्षावास के चातुर्मास काल का तो हो ही नहीं सकता।

- द्वितीय बैशाख की जगह प्रथम बैशाख में पारणा न मात्र खरतरगच्छ में वरन् सम्पूर्ण श्वेताम्बर संघ में विवाद का कारण बना। इसे सही ठहराने के लिये अनेकों झूठे साक्ष्यों का उदाहरण देने की चेष्टा की।

- इन्हें पूज्य गच्छाधिपति आचार्य श्री जिनकैलाश सागरसूरिजी ने सुखसागर समुदाय से निष्कासित किया। एक बार तो स्वयं सुखसागर समुदाय छोड़ गये व कांतिसागर समुदाय बना लिया।

- आचार्य श्री जिनकांतिसागरसूरिजी म.सा. को अकारण विवादित किया उन्हें गच्छाधिपति व पट्टधर लिखकर।

- ओली जी दूसरी पूनम को मनाना।

- बाड़मेर चातुर्मास पर चातुर्मास-अकारण विवाद।

- परिवारवाद व वंशवाद से उनके कार्यकलाप भरे हैं।

- साध्वाचार के विरुद्ध इनके पत्र चर्चा का विषय बने।

ऐसे अकारण विवाद व मिथ्यात्व की लम्बी सूची है। अधिकतर व्यक्तियों को इसकी जानकारी है व 'स्थूलिभद्र संदेश' के अंकों में दी जा चुकी है। अत: पुन:पुन: लिख पिष्ट पेषण नहीं करना चाहता।

संस्थापक संत प्रवर बिना किसी से विचार-विमर्श किये निर्णय लेते हैं उसी का परिणाम है कि वे सफल नहीं हो पाते। निर्णय लेने के उपरान्त वे चाहते हैं संघ उनके कहे पर सहमति प्रदान करे व उस सहमति हेतु वे दबाव की नीति अपनाते हैं या उसे ज़िद्द के द्वारा तर्क कुतर्क के आधार पर अपने निर्णय को सही सिद्ध करने का असफल प्रयत्न करते हैं। सही सिद्ध करने की ज़िद्द ही उन्हें मिथ्यात्व का सहारा लेने पर विवश करती है।

बिना सलाह लिये निर्णय का ताजा उदाहरण सहस्राब्दी 1075 के अनुसार मनाने का प्रयास करना। जब इसका विरोध हुआ तो 23 सितम्बर, 2018 को इन्दौर में बीच का रास्ता निकाल सन् 2021 -22 का निर्णय लिया, फिर वही बिना सलाह के। बिना सलाह के मालपुरा घोषणा व बिना सलाह लिये अपनी हाँ में हाँ मिलाने वालों को संयोजक बनाना। ये सारे अधिकार स्वयं ही ले लिये। किसी से विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं समझी। उनके अहं ने एक वहम पाल रखा है कि सब कुछ मैंने ही सम्हाल रखा है।

ये सब तब निर्णय लिये जब दोनों अग्रज आचार्य भगवंत व गणाधीश भगवन्त ने अपने संदेश व पत्रों में स्पष्ट कह दिया कि सारे प्रमाण खरतर बिरुद हेतु वि.सं. 1080 के उपलब्ध हैं और यही हमारे चौथे दादागुरु, महोपाध्याय समयसुन्दरजी व महोपाध्याय क्षमाकल्याण जी ने प्रमाणित किया है।

खरतरच्छ के सभी श्रमण व श्रावक गच्छ में संगठन सशक्त करने की इच्छा रखते हैं कोई विघटन नहीं चाहता। इसका प्रमाण है मालपुरा घोषणा पर हुई प्रतिक्रिया जो पूरे खरतरगच्छ में हर्ष की लहर के रूप में थी। लेकिन फिर बिना चिन्तन के निर्णय लेना (बाड़मेर चातुर्मास) व निर्णय के विरोध को समझने की जगह अपने निर्णय को लागू करने की ज़िद्द रखना, इसी कारण सभी का विश्वास पाते-पाते खो देते हैं। सम्मान देते हैं तभी सम्मान मिलता है अत: संस्थापक संत प्रवर को प्रथम सम्मान देने की प्रवृति को सीखना होगा।

मेरा विनम्र निवेदन है कि इस विषय को प्रतिष्ठा की दृष्टि से न लेकर खरतरगच्छ की एकता की दृष्टि से लिया जाय, जिसमें अकारण विवाद को समाप्त किया जा सके व 'सबका साथ, गच्छ व जिनशासन के विकास' की भावना से शक्ति का सदुपयोग किया जा सके।

खतरगच्छ पुन: उन्नति की ओर अग्रसर है। श्रमण व श्रावक सजग है। अकारण विवाद व असत्यता से उभरने के लिये प्रयासरत भी हैं। सत्य साधना के उद्घोष की आवश्यकता मात्र उन्हें है जो सत्य की राह से भटके हुये हैं। जो मात्र और मात्र सत्य की राह पर हैं वे निरन्तर द्रुतगति से परमात्मा महावीर के पथ पर आगे बढ़ रहे हैं। सही मानों में गच्छ व जिन शासन की सुरक्षा व प्रगति ऐसे महानुभावों के माध्यम से ही सभव है जो जनमत नहीं जिनमत में विश्वास रखते हैं। जैसे सूर्य को बादलों से अधिक देर के लिये ढका नहीं जा सकता वैसे ही सत्य को असत्य की चादर से अधिक देर के लिये ढका नहीं जा सकता।

सत्य अगर कठोर शब्दों में भी है तो वह स्वीकार करने योग्य है व असत्य मीठी वाणी में भी है तो त्याज्य है। असत्यता की ओर झुकने वाले,

सत्य वाणी में सत्यता की जगह कठोरता या कड़वाहट को ही मात्र देखते हैं, जो सही नहीं। होना तो यह चाहिये कि वाणी या लेखनी में सत्यता को समझने का सामर्थ्य पैदा करें। वर्तमान समय की नब्ज़ को समझकर असत्य से तौबा करना ही उचित है।

विद्वान व संत की लेखनी में विश्वसनीयता की कमी घातक है। एक झूठ, सफेद झूठ के रूप में सिद्ध हो जाये तो उनके पूर्व, वर्तमान व भविष्य में कहे व लिखे को सन्देह की दृष्टि से ही देखा जायेगा। ध्यान रहे कि मन में उतरना या मन से उतरना निज व्यवहार पर निर्भर करता है।

संघ समाज हो या परिवार, मुखिया तब तक मुखिया के रूप में सर्व स्वीकार नहीं जब तक उसमें सहनशीलता, उदारता, विनम्रता, गम्भीरता, प्रमाणिकता, दूरदर्शिता, गहन चिन्तन, समता व सबको साथ में रखने की क्षमता न हो। अतः परिवार प्रमुख, संस्था प्रमुख, उच्च पदस्थ संत या व्यक्ति को हठाग्रह तथा दुराग्रह से मुक्त होकर नीति एवं परम्परा सम्मत निष्पक्ष व्यवहार करना चाहिये जो सत्य तथा परस्पर स्नेह सम्मान युक्त हो। संस्थापक संत विशेष को अहं त्याग कर आत्म निरीक्षण करना चाहिये कि इन मनकों पर वे कितना खरा उतरते हैं एवं क्या उन्हें अपनी गलतियाँ सुधार कर संघ के सामने मिच्छामि दुक्कड़म करते हुये उदाहरण नहीं प्रस्तुत करना चाहिये? गणधर गौतम जैसे महान संत ने भी भगवान महावीर द्वारा गलती इंगित किये जाने पर आनन्द श्रावक से निःसंकोच मिच्छामि दुक्कड़म किया था।

खरतरगच्छ हितचिंतक के संयोजक श्री बसंत सिंह जी श्रीमाल के सम्मान में बाड़मेर में आयोजित सभा में जो निर्णय उभरकर आया कि वि.सं. 2080 में सहस्राब्दी महोत्सव खरतरगच्छ की उद्भव स्थली अणहिलपुर पाटण से प्रारम्भ होकर प्रथम दादागुरुश्री जिनदत्तसूरिजी म.सा. की स्वर्ग स्थली पर सहस्राब्दी महोत्सव समारोहपूर्वक सम्पन्न हो, स्वागत व स्वीकार योग्य है।

समारोह हेतु जो भी समिति बने उसमें महासंघ के पूर्व व वर्तमान अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, महामंत्री, कोषाध्यक्ष, सहमंत्री व पूरे भारत से प्रमुख श्रावकों को, जो धीर, गम्भीर, चिन्तक व गच्छ हित की सोच रखने वाले हों, लिया जाय। उस हेतु फण्ड का हिसाब-किताब रखने हेतु एक अच्छी व्यवस्था हो जो समारोह के पश्चात् संघ के समक्ष स्पष्टता से आय व्यय का हिसाब दे।

■

- ललित कुमार नाहटा, खरतरगच्छ हितचिंतक

परिशिष्ट-5

खरतरगच्छ के वरिष्ठ श्रावक पद्मचंद नाहटा का लेख

गणधर इन्द्रभूति

सामाजिक चेतना का संदेशवाहक मासिक

राग प्रभाती जे करे प्रहउगमतेसूर
भूखां भोजन सम्पजे कुर्ला करे कपूर
अंगूठे अमृत बसे लब्धि तणा भण्डार
जे गुरु गौतम सुमरिये मनवांछित दातार

वर्ष-१८ • अंक-१ No. 18 • Vol. 1	GANDHAR INDRABHUTI	अक्टुबर २०१८ OCTOBER 2018	मूल्य ३/- Rs. 3/-

जैनागमों की विशाल शोभायात्रा

बाड़मेर ३० सितम्बर। आचार्य श्री जिनकविन्द्रसागरसूरि जी, मुनि श्री मनितप्रभसागर जी, साध्वी श्री सुरंजनाश्री जी की निश्रा में श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ, बाड़मेर में जैन धर्म के ४५ आगमों की एक विशाल शोभायात्रा निकाली गई जो न्याती नोहरा से प्रारम्भ होकर शहर के प्रमुख मार्गों से होती हुई पुन: न्याती नोहरा आकर धर्मसभा में परिवर्तित हुई। शोभायात्रा में विशाल जनसमूह देखने को मिला।

श्री जिनचन्द्रसूरि जयन्ती

कोलकाता २७ सितम्बर। चतुर्थ दादागुरु देव श्री जिनचन्द्रसूरि जी की स्वर्गारोहण तिथी निमित्त कोलकाता श्रीसंघ द्वारा मनिकतल्ला दादाबाड़ी में बड़ी पूजा पढ़ाई गई तथा स्वधर्मी वात्सल्य का आयोजन किया गया।

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा

कोलकाता २९ सितम्बर। भगवान महावीर और उनके सिद्धान्तों पर आधारित महिलाओं की भाषण प्रतियोगिता का आयोजन श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा द्वारा अपने सभागार में किया गया। आयोजन की अध्यक्षता डॉ. किरण सिपानी ने की तथा श्रीमती बीना जैन ने प्रमुख अतिथि का आसन ग्रहण किया। निर्णायक मण्डल-श्रीमती मंजू भंडारी, श्रीमती सुनीता कोचर, श्रीमती प्रमोद कठोतिया ने नेहा डागा को प्रथम, प्रीति सिपानी को द्वितीय एवं गीतिका बोथरा को तृतीय स्थान दिया। तीनों विजेताओं को पुरस्कृत किया गया।

आचार्य श्री रविरत्नसूरि जी

सूरत। पूज्य आचार्य श्री रविरत्नसूरि जी, पं. श्री वैराग्यरत्नविजय जी, श्री जयेशरत्नविजय जी आदि ठाणा ९ की निश्रा में चातुर्मासिक आराधना का ठाठ चल रहा है दैनिक उपदेश माला, रविवारीय बाल शिविर, गिरनार भाव यात्रा आदि सभी तरह के आयोजनों से श्री अरिहन्त पार्क श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन श्रीसंघ हर्षित है।

श्री जिनदत्तसूरि महिला मण्डल

कोलकाता। श्री जिनदत्तसूरि महिला मण्डल द्वारा साध्वी श्री जिनरत्नाश्री जी की निश्रा में योग ध्यान शिविर का आयोजन दिनांक ३ से ५ अक्टुबर को मनिकतल्ला दादाबाड़ी में किया गया। प्रतिदिन प्रात: १० से ११.३० तक हुए इस शिविर में शताधिक श्रावक-श्राविकाओं ने लाभ उठाया।

श्री विजय वल्लभसूरि जयन्ती

कोलकाता ७ अक्टुबर। आचार्य श्री मुक्तिप्रभसूरि जी एवं आचार्य श्री विनितप्रभसूरि जी की निश्रा में श्री विजयवल्लभसूरि जी की ६५वीं स्वर्गारोहण तिथि श्री वर्धमान जैन संघ के सभागार में अनुष्ठित हुई। अष्टप्रकारी पूजा एवं इकतीसे का पाठ किया गया तत्पश्चात् गुरु प्रसादी दी गई। साध्वी श्री जिनरत्नाश्री जी, श्री धर्मरत्नाश्री जी आदि साध्वी मण्डल ने कार्यक्रम को अपनी सानिध्यता प्रदान की।

विचक्षण स्मृति समारोह

मुम्बई। श्री महावीर स्वामी जैन देरासर पायधुनी ट्रस्ट के तत्वावधान में प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्री स्मृति समारोह बिड़ला सभागार में आयोजित हुआ। राष्ट्रसंत महोपाध्याय श्री ललितप्रभसागर जी, मुनि श्री शान्तिप्रियसागर जी, साध्वी श्री हेमप्रज्ञा श्री जी तथा गणिनीश्री सुलोचनाश्री जी की शिष्याओं ने समारोह में अपनी उपस्थिति प्रदान की। प्रवचन के साथ उनके जीवन वृत्त पर आधारित नाटिका का मंचन भी किया गया। श्री सुधीर कोचर, आई.ए.एस. ने भी अपने उदगार रखे। कार्यक्रम के पश्चात् स्वधर्मी वात्सल्य भी रखा गया।

श्री मानिक जैन सम्मानित

कोलकाता। कोलकाता जी.पी.ओ. के शताब्दी वर्ष के अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त डाक टिकट संग्राहक श्री मानिक जैन को उनकी दीर्घकालीन सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया।
गणधर इन्द्रभूति परिवार की हार्दिक बधाई।

हिन्दी दिवस

कोलकाता २५ सितम्बर। जैन कॉलेज में हिन्दी दिवस के उपलक्ष में साहित्यिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम अनुष्ठित हुआ जिसकी अध्यक्षता कॉलेज की प्राचार्या डॉ. मौसमी सेनगुप्ता ने की प्रमुख अतिथि के रूप में सेंट पॉल्स् कॉलेज के डॉ. कमलेश पाण्डेय पधारे। कार्यक्रम का संयोजन डॉ. किरण सिपानी ने किया तथा सफल संचालन स्वाति शर्मा ने किया।

खरतरगच्छ स्थापना का काल निर्णय

खरतरगच्छ की स्थापना संवत् १०८० में हुई, यह इतिहास में स्पष्ट उल्लेखित है। सभी पूर्वाचार्यों, इतिहासकारों तथा सुविज्ञ आचार्यों ने इसे एक मत से स्वीकार किया है। आचार्य श्री मणिप्रभसूरि जी इसे १०७५ मानते हैं। वर्तमान आचार्यों और पूर्वाचार्यों के मन्तव्य यहाँ दिये जा रहे हैं।

१) गणाधीश पन्यास श्री विनयकुशल मुनि गणि

७ सितम्बर १८ का "खरतर विरुद का काल खण्ड" विषय का पत्र प्राप्त हुआ। इस पत्र में एक भी ऐसा प्रमाण नहीं है जो यह सिद्ध कर सके कि खरतर विरुद संवत् १०७५ में प्राप्त हुआ सिर्फ कल्पनाओं के आधार पर हम इसे १०७५ तय करेंगे, यह इतिहास के साथ नाइंसाफी होगी। आप स्वयं स्वीकार कर रहे हैं की प्रमाणों से वि.सं. १०८० का उल्लेख ज्यादा प्रमाणिक है। आप सं. १०८० को नहीं मानने का कारण कहते है कि दुर्लभराजा ने वि.सं. १०६६ से १०७८ तक पाटण पर शासन किया। इसमें यह कहीं सिद्ध नहीं होता कि दुर्लभराजा इस समय जीवित नहीं थे, वो राज्यपद पर नहीं थे किन्तु ज्ञानी होने की वजह से पुत्र ने पिता को ही इस धर्मचर्चा में निर्णायक की भूमिका पर बैठाया।

दूसरा तर्क आपश्री ने दिया कि उस समय आचार्य जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि का चातुर्मास जालोर में था। पाटण से जालोर लगभग २०० कि.मी. है तथा उस समय की भौगोलिक स्थिति के हिसाब से जालोर भी गुर्जर प्रदेश का हिस्सा था। इसलिए मासकल्प के पालन के कारण (क्योंकि वे उत्कृष्ट संविग्न साधु थे) पाटण से विहार कर जालोर आये होंगे और वहाँ अन्य साधु भगवन्तों को चातुर्मास के लिये भेजा होगा। उस समय क्षेत्र के नाम भी गुजरात, राजस्थान आदि नहीं थे।

तीसरे तर्क के अन्तर्गत आपश्री २०४० के गढ़सिवाना के विचार-विमर्श के आधार पर १०७५ करने की बात करते हैं तो पहली बात तो यह की इतने वर्षों में इस चर्चा को संघ के समक्ष क्यों नहीं रखा गया? दूसरा क्या वर्तमान के आचार्य साधु-साध्वीयां दादागुरुदेव जिनचन्द्रसूरिजी, समयसुन्दरजी से भी ज्यादा ज्ञानी हो गये कि उनके बताये संवत को बदल कर अपनी मति अनुसार तय किये गये संवत को खरतरगच्छ स्थापना दिवस मनाये समयसुन्दरजी महाराज जिनकी समाचारी वर्तमान में खरतरगच्छ में निर्विवाद रूप से सभी में आदर सहित स्वीकार्य है किन्तु इस एक बदलाव से भविष्य में इस समाचारी का महत्व भी समाप्त हो जायेगा। वे अत्यन्त ज्ञानी महापुरुष थे, ज्यादा गीतार्थ थे, उन्होंने भी सब सोच विचार करके ही संवत् १०८० का उल्लेख प्रस्तुत किया होगा।

यदि हम अंत में बात करें 'श्रवण परम्परा' की तो सम्पूर्ण जैन धर्म "श्रवण परम्परा" पर ही निर्भर करता है, यदि इस श्रवण परम्परा को अमान्य करते हैं तो सभी आगम आदि भी व्यर्थ हो जायेंगे क्योंकि सम्पूर्ण आगम इत्यादि भगवान के निर्वाण के ९८० वर्ष बाद लिखे गये। उससे पूर्व वे श्रवण परम्परा पर ही आधारित थे।

सभी प्रमाण १०८० के पक्ष में है तथा ये प्रमाण देने वालों के सामने शेष सभी, चाहे वे साधु-साध्वी हों या श्रावक-श्राविका चाहे इतिहासज्ञ हों, ये सभी प्रमाण लिखने वाले पूर्वाचार्यों के सामने सूर्य के सामने जुगनु जैसे हैं।

अतः हमारे मतानुसार गच्छ एकता-ऐतिहासिक प्रमाणों को ध्यान में रखते हुए समझदारी का निर्णय लेते हुए इसे १०८० तय करना चाहिये ताकि भविष्य में हमें शर्मिन्दा न होना पड़े क्योंकि १०७५ के पक्ष में लिखित एक भी प्रमाण नहीं है।

२) आचार्य श्रीजिनपूर्णानन्दसागरसूरि

कृपा पत्र सभी संप्राप्त हुए। अवलोकन किया। मन प्रमुदित हुआ था तब-जब मालपुरा की परम पवित्र भूमि, दादागुरुदेव की शान्त सुरम्य छत्र छाया में गच्छ एकता का शंखनाद हुआ-जिसे सभी ने बधाया था-पर इतनी जल्दी फिर कोई बात इतना तुल पकड़ लेगी कल्पना न थी। सभी के स्वरों को-लेखनी को, सुन रहा था, पढ़ रहा था पर अंततः मुझे भी कलम उठानी पड़ी-खरतरगच्छ के उद्भव सं. १०७५-१०८० की चर्चा पर। कुछ बिन्दुओं पर चिन्तन परमावश्यक है-यथा --

किसी प्रकार की घोषणा से पूर्व परस्पर हम विचार-विमर्स करें-ताकि व्यर्थ विवाद से बचा जा सके। इस बात को भविष्य में भी ध्यान रखा जाये। पुनः पुनः प्रमाण देकर मैं पिष्ट पोषण नहीं करुंगा-पर जो विवादित विषय है उसका पटाक्षेप आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। किसी भी चर्चा को लम्बी न करते हुए हम संवाद कर सहृदयता का परिचय दें।

उत्पत्ति कब हुई इस विषय में अन्य कुछ माने या न माने पर हमारे परमाराध्य चारों दादागुरुदेव में से चतुर्थ दादागुरुदेव जिनकी उपस्थिति में अंकित अहमदाबाद का शिलालेख हमारी समर्पणा के आधार पर हमें तहत्ति कहनेको प्रेरित करता है। चूंकि चतुर्थ दादागुरुदेव हमारे श्रद्धास्पद-आराध्य होने के साथ-साथ 'युगप्रधान' भी हैं। अतः इन सब चर्चाओं को विराम देते हुए हमारे परमाराध्य चतुर्थ दादागुरुदेव द्वारा उल्लिखित सं. १०८० को ही स्वीकार्य करके गच्छ गौरव अनुरूप इस ऐतिहासिक सहस्राब्दी समारोह को भव्य स्तर पर मनाना चाहिये जिससे चतुर्विध संघ का प्रत्येक सदस्य सहभागी एवं सहयोगी बने। खरतरगच्छ की गौरवशाली एवं प्रखर परम्परा की पुनः स्थापना के लिये पूरे गच्छ-संघ को मिल कर सामुहिक चिन्तन कर यथायोग्य निर्णय लेने चाहिये एवं सभी के द्वारा उनकी अनुपालना सुनिश्चित करना चाहिये।

महरौली अष्टम शताब्दी एवं गढ़सिवाना सप्तम शताब्दी में गुरुदेव की निश्रा में चश्मदीद गवाह रहा हूँ। वहाँ इस विषय में कोई चर्चा नहीं हुई।

खरतर विरुद्ध सं. १०७५ में मिला होगा-पर चिन्तन करें प्रतिष्ठा महोत्सव प्रारम्भ ३,५,८,१०,११ दिन पूर्व भी होता है तथापि प्रतिष्ठा दिवस ही इतिहास के पृष्ठों पर अंकित होता है। वर्तमान की भाँति पूर्व में इतने त्वरित साधन नहीं थे अतः उस समय पर मुहर लगते-लगते स. १०८० हो गया होगा। अतः इन सारी चर्चाओं को विराम देते हुए चुंकि (आपके द्वारा) २०७५ का घोषित हुआ है हम यहाँ से महोत्सव आरम्भ कर सं. २०८० में महामहोत्सव का समापन करें। इससे गच्छ की एकता-गरिमा-अखण्डता बनी रहेगी परस्पर मैत्री की धारा बहेगी

परमात्मा महावीर के अनेकांत को ध्यान में रखते हुए 'सच्चा सो मेरा' इस बात पर आवें-ऐसा मेरा निवेदन है। युवा पीढ़ी भ्रमित नहीं होगी। जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ लिखा हो तो त्रिविध मिच्छामि दुक्कडम।

३) आचार्य श्री जिनपीयुषसागरसूरि

ज्ञातव्य ज्ञात हुआ है कि आपश्री के द्वारा गच्छ के सर्व साधु-साध्वीयों को खरतरगच्छ सहस्राब्दी वर्ष के विषय में एक पत्र प्रेषित किया गया है।

अचरज का विषय है कि ऐसा पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ है उपर्युक्त पत्र के माध्यम से आपश्री ने इस ऐतिहासिक प्रसंग निमित्त महोत्सव की रूपरेखा, स्थान, समय निर्धारित करने जैसे महत्वपूर्ण निर्णयों पर विचार मांगे हैं, ऐसी जानकारी हमें गच्छ के पदस्थ, अपदस्थ, साधु-साध्वीयों से प्राप्त हुई है।

गच्छ के ऐतिहासिक निर्णय पर इतिहास के संदर्भ को संज्ञान में रखना अति आवश्यक है, वरना इस ऐतिहासिकता पर भविष्य में सवालिया निशान खड़े हो सकते हैं।

भले ही आपके द्वारा हमें पत्र प्राप्त नहीं हुआ परन्तु इस जानकारी से हमारा दायित्व बन जाता है कि इस विषय पर हम भी अपने विचार सम्प्रेषित करें। क्योंकि यह व्यक्तिगत नहीं अपितु हमारे गच्छ के गौरव और अस्मिता का सवाल है।

उक्त संदर्भ में जितनी भी ऐतिहासिक सामग्रियां हमें उपलब्ध है वह इस पत्र के साथ संलग्न कर रहे हैं। इस विषय पर आप गहन चिन्तन करें एवं प्रमाण सम्मत निर्णय करें।

४) अहमदाबाद का प्राचीन शिलालेख

अहमदाबाद के कालुपुर विस्तार में शान्तिनाथ पोल स्थित श्री शान्तिनाथ जिनालय के गर्भगृह के बाहर गुढ़ मण्डप में दायें दीवार पर एकसाथ उपर नीचे ६ शिलालेख अंकित है उसमें खरतरगच्छ की उत्पत्ति सं. १०८० का उल्लेख किया गया है।

५) रत्नसागर

लगभग १५० से ज्यादा वर्ष पूर्व कलकत्ता से प्रकाशित रत्नसागर के पृष्ठ संख्या ८२८ में साफ लिखा है -

श्री वर्धमानसूरि हुए (४०वीं पाटे) श्री जिनेश्वरसूरि: हुए (सो) अलहण पुर पट्टण में। दुर्लभ राजा की सभा में। चैत्यवासियों को विवाद करके जीते (इस सेती) सं. १०८० खरतर विरुद्ध पाटण के राजा ने दिया। अतिशय पणें सिद्धान्त मार्ग से सच्चा हुवा इससे खरतरगच्छ प्रसिद्ध हुवा। इहाँ से कोटिक गण (चन्द्र कुल) (वज्रशाखा) और (खरतर विरुद) का।

६) पर्युषणाष्टाह्निका व्याख्यान (गुजराती भाषान्तर)

लेखक - बुद्धिसागर गणि। प्रकाशन वर्ष - सं. २०१८ कल्याण भुवन, पालीताना। पृष्ठ संख्या २२४

आचार्य हरिभद्रसूरि के जेमणे याकिनी नामे महत्तरा साध्वी थी प्रतिबोध पामीने दीक्षा लीधी अने विविध प्रकारे शासन नो उद्योत कर्यो। तेमज सिद्धवणनी नीचे चौर्यासी साधुओं ने आचार्य पद आपी ने चौर्यासी गच्छो नी स्थापना करनार श्री उद्योतनसूरि जी थया, तेमना शिष्य वर्द्धमानसूरि जी थया, ते जेमणे ६ मास सुधी लागट आबिंल नी तपस्या ना बले बुलावेल धरणेन्द्र नी सहाय थी सूरि मंत्र नुं संशोधन कर्यू अने आबु पर मंत्री विमलशाहे बन्धावेल विमलवसही चैत्य नी प्रतिष्ठा करी। तेम ना शिष्यो जिनेश्वरसूरि अने बुद्धिसागरसूरि थया। तेमा थी आचार्य जिनेश्वरसूरि ये विक्रम संवत् एक हजार एंसीना वर्षे अणहिल पुर पाटण नी राजसभा समक्ष साधु ना आचार विचार सम्बन्धी विवाद मां सूराचार्य आदि चैत्यवासियों ने जीतीने महाराजा दुर्लभराज पासे थी यथार्थ नाम वालू खरतर एवु विरुद मेलव्युं।

7) Who's who of World Religion (Page 190)

(by Jhon R. Hinnells. BD. FSA. FRAS. Prof. of Theology. University of Manchester)

Jinesvara in 1024 defeated in debate a leading temple dwelling monk named Sura in front of the royal assembly of King Durlabha at his capital Patan, in north Gujrat. As a result of this victory Jinesvara seems to have had the epithet 'Khartara' bestowed upon him and the lineage of monks which succeeded him took this as the name of the sect (Gachha)

8) Chaulukyas of Gujrat

(by - Prof. Ashok Kumar Mazumdar, MA, D.Phil.
Published by Bhartiya Vidya Bhawan 1956, Page 41)

At the end of his Commentary of Mahesvar Kavi's Sabdabhedprakasa Jnanavimala gives the spritual lineage of the khartar sect to which he belonged and traces its begining to the year v.s. 1080 (A.D. 1024) when the great Jain Monk Vardhamana Suri and his desciple Jinesvara visited the court of Durlabha in Anahilapataka. There under royal patronage was held a great debate in which Jinesvara defeated the chaityavasins. Chaityavasins then had to carry out the conditions of defeat and left the capital accordingly and Durlabha pleased with the accumen of Jinesvara conferred on him the title of Khartara (very keen) when Jinesvara succeeded his preceptor Khartara became the name of the sect or Gachchha which he led.

९) द्वादश पर्व व्याख्यान - प्र. सज्जनश्रीजी

पृष्ठ संख्या २०४-२०५, प्रकाशन वर्ष १९९१

कोटिकगण वज्रशाखा चन्द्रकुल में एक सहस्र वि. सं. १००० में श्री वर्द्धमानसूरि होंगे। उनके शिष्य महाप्राज्ञ श्री जिनेश्वरसूरि होंगे वे सं. १०८० में अणहिलपुर पाटन में तत्कालीन नृपति दुर्लभराज भीमदेव की सभा में चैत्यवासियों के साथ वाद में जय प्राप्त कर खरतर विरुद प्राप्त करेंगे।

१०) युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि - पुस्तक

पृष्ठ संख्या ८,

सं. १०८० में राजसभा में जिनेश्वरसूरि जी का चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ। फलतः चैत्यवासियों की पराजय हुई, क्योंकि शास्त्रोक्त विधि को पालन करने में असमर्थ थे, उनका चरित्र जैनागमों के विरुद्ध और दूषित था और सत्य की विजय सब काल में सुनिश्चित है। इससे महाराजा दुर्लभ ने श्री जिनेश्वरसूरि का पक्ष खरा अर्थात् प्रमाणित किया तभी से उनका समुदाय खरतरगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

११) वृद्धाचार्य प्रबन्धावाली: अन्तर्गत - जिनेश्वरसूरि प्रबन्ध:

पासित्ता जिणसासणुन्नइकए सिरिदुल्लहराय सभाए वायं कयं!
दससय चऊवीसे वच्छरे ते आयरिया मच्छरिणो हारिया।
जिणेश्वरसूरिणा जियं। रन्ना तुट्ठेण खरतर इइ बिरुदं दिन्नं। तओ परं खरतरगच्छो जाओ।

१२) अभिधान राजेन्द्र कोश

वि. सं. १०८० श्री पत्तने वादिनो जित्वा खरतरेताख्यं विरुदं प्राप्तेन जिनेश्वरसूरिणा प्रवर्तिते गच्छे :- आत्म प्रबोध (१४१)

असीत तत्पादपंकजै कमधुकृत श्री वर्धमानाभिध: सूरिस्तस्य जिनेश्वराख्याणभूज्जातो विनयोतम:। य: प्रापत् शिव सिद्धिपक्ति (सं. १०८०) शरदि श्री पत्तने वादिनो जित्वा सद्विरुद्वं कृति खरतरेख्यां नृपादेर्मुखात (अष्ट: ३२ अष्ट)।

खरतरगच्छीय सभी पट्टावलीयों में सं. १०८० का ही उल्लेख है। इनके अतिरिक्त कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य, चतुर्थ दादागुरुदेव श्री जिनचन्द्रसूरिजी, श्री जिनलाभसूरिजी, महोपाध्याय समयसुन्दरजी, महोपाध्याय क्षमाकल्याणजी, श्री आनन्दसागरसूरिजी या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी सभी ने एकमत से सं. १०८० को मान्य किया है। (लेख के विस्तार को देखते हुए यहाँ हम सिर्फ पूर्वाचार्यो के नाम दे रहे हैं, कोई देखना चाहे तो सारे प्रमाण मौजूद है।)

सभी पूर्वाचार्यो के उपलब्ध ग्रन्थों में सं. १०८० का स्पष्ट उल्लेख है जबकि १०७५ का कोई प्रमाण नहीं। सिर्फ आचार्य श्री मणिप्रभसूरि अकारण १०७५ को लेकर मनगढ़न्त कहानीयाँ कह रहे हैं। ५ सितम्बर २०१८ के 'जहाज मन्दिर' में 'खरतर विरुद प्राप्त का कालखण्ड' में आप लिखते हैं –

वि.सं. २०४० में जब गढ़सिवाना पोल के भीतर शंखेश्वर पार्श्वनाथ जिन मंदिर और कुशलसूरि दादाबाड़ी की प्रतिष्ठा के साथ-साथ दादा जिनकुशलसूरि सप्तम शताब्दी समारोह का आयोजन था। इस समारोह में पू. आ. जिनउदयसागरसूरिजी, पू.आ. जिनकान्तिसागरसूरिजी, पू.मुनि श्री महोदयसागरजी, मुनि श्री कैलाशसागरजी आदि मुनिमण्डल के साथ समुदायाध्यक्षा श्री चम्पाश्री जी, अविचलश्री जी, प्र. श्री सज्जनश्री जी, हेमप्रभाश्री जी आदि वरिष्ठ साध्वीयों की पावन उपस्थिति थी।

समारोह में श्री भँवरलाल जी नाहटा, श्री विनयसागरजी आदि इतिहास के विशिष्ट विद्वान व्यक्ति उपस्थित थे।

उस समय इस विषय में गहन चर्चा चली थी। निर्णय करते समय इस मत का ध्यान रखा गया कि दुर्लभराजा का शासन काल १०७६ या १०७८ तक ही रहा था तथा आचार्य द्वय जालोर में विराजमान थे। सभी स्पष्ट रूप से एक मत थे कि १०८० तो हो ही नहीं सकता, तब उपस्थित आचार्य श्री, मुनि मण्डल, साध्वी मण्डल, इतिहासज्ञों आदि ने खरतर विरुद की प्राप्ति का वि.सं. १०७५ का वर्ष निश्चित किया।

इसी निर्णय के आधार पर ३५ वर्ष पूर्व मेरे द्वारा रचित/निर्मित खरतर चालीसा में वि.सं. १०७५ का उल्लेख किया गया था। उस समय प्रकाशित श्री जिनकुशलसूरि सप्तम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ में यह चालीसा प्रकाशित है। उस चालीसा जिसकी रचना वि. २०४० में मिति चैत सुदी १२ को की थी। उसमें लिखा है –

अर्पण खरतर विरुद किया है, परकट भावोल्लास किया है।
सूरिजिनेश्वर घोषित होते, विजयी-विजयी उद्घोष प्रकटो ।।२५।।
संवत सहस पचोत्तर वर्ष, घटना बनी यह सबजन हर्षे।
तब से गच्छ हुआ ये खरतर, शुभ्र सनातन सात्विक खरतर।।२६।।
श्री जिन कान्तिसागरसूरिश्वर राजे, सिंह गर्जना वत वे गाजे।
प्रज्ञा पुरुष प्रवर कहलाते, सुन व्याख्यान सहु हरसाते।।२७।।
प्रधान शिष्य तसु दोय हजारे, चालीसे शुभ सुरज बारे।
चैत सुदी १२ दिन आया, मणिप्रभसागर अति हरसाया।।२८।।

उपसंहार -

इन सभी प्रमाणों से यह स्पष्ट हैं कि शास्त्रार्थ द्वारा खरतर विरुद की प्राप्ति १०८० से पूर्व ही हुई थी। वि.सं. १०७५ का निर्णय गढ़सिवाना में पूज्य गच्छाधिपति आचार्य द्वय, मुनिराजों, साध्वीवर्याओं व इतिहासज्ञों की आज से ३५ वर्ष पूर्व हुई सर्वसम्मति का परिणाम है।

आचार्य श्री मणिप्रभसूरि का उपरोक्त लेखन सर्वथा मिथ्या व मनगढ़न्त है कारण–

१) आपने स्पष्ट लिख है कि गहन चर्चा के निर्णय के आधार पर आपने खरतर चालीसे में १०७५ लिखा है जिसकी रचना चैत सुदी १२ सं. २०४० है। गढ़सिवाना का आयोजन बैसाख महिने में था। यह रचना उस कार्यक्रम से पूर्व की है। अत: स्वयं अपना कथन मिथ्या प्रमाणित कर रहे हैं।

२) यदि इस विषय पर चर्चा हुई होती तो तत्कालीन प्रकाशित कुशल निर्देश (जून १९८३), जिसमें गढ़सिवाना के विस्तृत समाचार छपे हैं, उसमें इस का उल्लेख अवश्य होता।

३) पू. प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी गढ़सिवाना में उपस्थित थे। यदि यह चर्चा हुई होती तो वे अपनी पुस्तक 'द्वादश पर्व व्याख्यान' में सं. १०८० कभी नहीं लिखते। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् १९९१ में श्री जिनदत्तसूरी सेवा संघ कोलकाता द्वारा कराया गया।

४) ये हवाला दे रहे हैं कि आचार्य श्री जिनकैलाशसागरसूरि भी उस चर्चा में सम्मिलित थे और १०७५ के लिए उनकी भी सहमति थी। इस गंभीर ऐतिहासिक विषय पर कोई चर्चा ही नहीं हुई, यदि होती तो आचार्य श्री द्वारा संशोधित महासंघ के पंचांग में खरतर सं. का उल्लेख १०८० के हिसाब से कभी नहीं होता।

५) आचार्य श्री जिनपीयुषसागरसूरि अपने समीक्षात्मक विवेचन में लिखते हैं कि 'उस समय मुनिश्री पूर्णानन्दसागरजी (वर्तमान में आचार्य) एवं स्वयं मैं (मुमुक्षु के रुप में) वहाँ मजूद थे, हम दोनों के ही संज्ञान में यह बात नहीं आई।

६) प्रारम्भ में उल्लेखित आचार्य श्री जिनपूर्णानन्दसागरसूरि के पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि महरौली अष्टम शताब्दी एवं गढ़सिवाना सप्तम शताब्दी का मैं गुरुदेव की निश्रा में चश्मदीद गवाह हूँ। वहाँ इस विषय में कोई चर्चा ही नहीं हुई।

७) यहाँ इनका गच्छाधिपति आचार्य द्वय लिखना भी हास्यास्पद लगता है क्योंकि हमारी परम्परा में गच्छाधिपति एक ही होता है और उस समय आचार्य श्री जिनउदयसागरसूरि गच्छाधिपति थे।

पिछले कई वर्षो में न जाने कितनी वार आचार्य श्री मणिप्रभसूरि ने, जब भी हमारे पर्व आदि आते हैं, परम्परा को ताक पर रख एक विवाद खड़ा कर देते है। हर अवसर पर इनके द्वारा किये गये मिथ्या पोषण से अपना विश्वास तो खोया ही है साथ ही दूसरे सम्प्रदायों/गच्छों में खरतरगच्छ का हलकापन ही दिखाया है।

उपरोक्त सभी बातों पर गहन चिन्तन कर पाठकगण स्वयं सत्य का अन्वेषण करें और कब मनाना निश्चित करें। यह कोई व्यापार नहीं कि किसी पार्टी में लाख रुपया बाकी हो और न देने की स्थिति में आधे पौने में सेटलमेन्ट कर लें। अभी हाल ही में आचार्य श्री मणिप्रभसूरि ने इन्दौर में अपने भक्तों की सभा में १०७५-

परिशिष्ट-6

गणाधीश पं विनयकुशल मुनि गणिवर्य का पत्र

।। श्री स्तंभन पार्श्वनाथाय नमः ।।

।। दादा श्री जिनदत्त-मणिधारी जिनचन्द्र-जिनकुशल-जिनचन्द्र सूरि गुरुभ्यो नमः ।।

गणाधीश पंन्यास विनयकुशल मुनि गणि

पत्र क.

प्रवास स्थल : ब्यावर

दिनांक : 21-9-2018

गच्छाधिपति आचार्य श्री जिनमणिप्रभसूरीश्वर जी म. सा. को वन्दना - सुखशाता
देव गुरु की कृपा से हम आनंद मंगल में है तथा आप श्री के उत्तम स्वास्थ्य की मंगल कामना करते हैं। विशेष आपश्री का 7-सितम्बर-18 का "खरतर बिरुद प्राप्ति का कालखंड" विषय का पत्र प्राप्त हुआ। इस पत्र में ऐसा एक भी प्रमाण नहीं है जो यह सिद्ध करे कि खरतर बिरुद संवत 1075 में प्राप्त हुआ। सिर्फ कल्पनाओं के आधार पर हम इसे 1075 तय करेंगे यह इतिहास के साथ नाइंसाफी होगी। आप स्वयं स्वीकार कर रहे है कि प्रमाणों से वि. स. 1080 का उल्लेख ज्यादा प्रामाणिक है। आप संवत 1080 को नहीं मानने का कारण कहते है कि दुर्लभराज ने वि. सं. 1066 से वि. सं. 1078 तक पाटण पर शासन किया। इसमें यह कहीं सिद्ध नहीं होता कि दुर्लभ राजा उस समय जीवित नहीं थे, वो राजा के पद पर नहीं थे किंतु ज्ञानी होने की वजह से पुत्र ने पिता को ही इस धर्मचर्चा में निर्णायक की भूमिका पर बैठाया। दूसरा तर्क आपश्री ने दिया कि उस समय आचार्य जिनेश्वरसूरि व बुद्धिसागर सूरि जी का चातुर्मास जालोर में था। पाटण से जालोर लगभग 200 Km है तथा उस समय की भौगोलिक स्थिति के हिसाब से जालोर भी गुर्जर प्रदेश का हिस्सा था। इसलिए मासकल्प के पालन के कारण (क्योंकि वे उत्कृष्ट संविग्न साधु थे) पाटण से विहार कर जालोर आए होंगे और वहाँ अन्य साधु भगवन्तो को चातुर्मास के लिए भेजा होगा। उस समय क्षेत्र के नाम भी गुजरात- राजस्थान आदि नहीं थे।

तृतीय तर्क के अन्तर्गत आपश्री 2040 के गढ सिवाना के विचार- विमर्श के आधार पर 1075 करने की बात कहते है तो पहली बात तो यह कि इतने वर्षों में इस चर्चा को संघ के समक्ष क्यों नहीं रखा गया? दूसरा क्या वर्तमान के आचार्य साधु- साध्वीयां, दादागुरुदेव जिनचन्द्रसूरि जी समयसुंदर जी से ज्यादा ज्ञानी हो गए कि उनके बताए संवत को बदलकर अपनी मतिनुसार तय किए गए संवत को खरतरगच्छ स्थापना दिवस मनाए। समयसुंदर जी म. सा. जिनकी समाचारी वर्तमान में खरतरगच्छ में निर्विवाद रूप से सभी में आदर सहित स्वीकार्य है किंतु इस एक

To be continued ... 2

अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ महासंघ

परिशिष्ट-7

बीकानेर जैन संघ (बडा अपासरा) का पत्र

दिनांक: 26-10-2018

परम आत्मीय

सादर जय जिनेन्द्र,

जंगम युग प्रधान, वृहद् भट्टारक, खरतरगच्छाधिपति 1008 श्रीपूज्यजी श्री जिनचंद्र सूरि जी महाराज साहब का 64 वां जन्मोत्सव अत्यंत उल्लास पूर्वक अनेकों जगहों पर मनाया गया। स्थान-स्थान पर दादागुरुदेव की बड़ी पूजा, दादागुरुदेव इकतीसा, सत्य साधना सत्र, वृक्षारोपण और सेवा के कई आयोजन हुए। जिनमें सम्मिलित लोगो ने धर्म का लाभ लिया। इन सभी उत्सवों में सहभागी सभी लोगो को आत्मीय आभार।

तीर्थंकर भगवान महावीर ने प्राणीमात्र के भले एवं कल्याण के लिए अगणित दु:खों का सामना एवं लंबे-लंबे समय तक ध्यान साधना की। उन्होंने हम सभी को सुख शांति का रास्ता बताया। इस सुख शांति के रास्ते को पिछलें 1000 वर्षों से खरतरगच्छ की श्रीपूज्य परंपरा द्वारा सभी लोगो के पास तक पहुँचाया जा रहा है। इस खरतरगच्छ की धारा के अवदानो, उपकारों का उल्लेख करने में अनेकों ग्रंथ भी कम पड़ जाए। ऐसी दिव्य खरतरगच्छधारा का सहस्त्राब्दी पर्व हम सभी को 6-7 अप्रैल 2019 से मनाने का अवसर प्राप्त हो रहा है। इसको मनाने की रूप रेखा के कुछ बिंदु निम्न है-

1. खरतरगच्छ का इतिहास, खरतरगच्छ की उपलब्धियाँ जन-जन तक पहुँचाना।
2. सुख शांति, मुक्ति प्रदायक सत्य साधना को हर बाल, युवा और वृद्ध अनुभव करे।
3. सत्य साधना शिविर, सत्यसाधना सत्र एवं सत्य साधना परिचय सभा स्थान-स्थान पर आयोजित करें।
4. दादागुरुदेव की बड़ी पूजा, दादागुरुदेव इकतीसा, एक आध्यात्मिक विरासत विजय, भजन संध्या, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि आयोजित करें।
5. श्रीपूज्यों, यतियो आदि के उपकारों एवं कार्यों से परिचित हो।

अपने-अपने स्थान पर सहस्त्राब्दी पर्व के कार्यक्रमों की रुपरेखा यथाशीघ्र तैयार करें। बड़ा उपासरा खरतरगच्छ श्रीसंघ को भी आप अपने यहां होने वाले कार्यक्रमों की जानकारी देवें।

अजय धाड़ीवाल
अध्यक्ष

Bada Upasra, Rangri Chowk, Bikaner, 334001 Kushlayatan, Nal-Bikaner 334001
www.satyasadhna.com kushlayatan@gmail.com
9829173801, 9829169991, 9874211111

परिशिष्ट-8
तीर्थंकर मूर्तियों पर जाली लेख का सत्य

- मु ज्ञानसुंदरजी म.सा.

"जैन सत्यप्रकाश मासिक" अखबार जो अहमदाबाद से प्रकाशित होता है उसके वर्ष पांचवां अंक सातवें के पृष्ट २५४ ता. १५-३-४० के अंक में श्रीयुत्त पन्नालालजी दूगड़ जौहरी देहली वालों ने "विद्वानों से आवश्यक प्रश्न" शीर्षक एक लेख प्रकाशित करवा कर विद्वानों से पूछा है कि आप इन आठों शिलालेखों को प्रमाणित मानते हो या अप्रमाणिक ? उसके जवाब में इतिहासवेत्ता विद्वद्वर्य पन्यासजी श्रीकल्याणविजयजी महाराज ने उसी अखबार के अंक ८ वां पृष्ट २६७ ता. १५-४-४० के अंक में "आठों ही लेख अप्रमाणिक हैं" शीर्षक लेख प्रकाशित करवाया है। जिसको पाठकों के अवलोकनार्थ अलग इस ट्रेक्ट द्वारा मुद्रित करवा दिया जाता है जिसको पढ़ने से लोगों को भली भांति रोशन हो जायगा कि खरतरों ने खरतर शब्द को प्राचीन साबित करने के लिये अर्थात् अपनी झूठी बात को सच्ची बनाने के लिये केवल पट्टावलियों वगैरह ग्रन्थों में ही नहीं पर खास तीर्थंकर देवों की मूर्तियों पर जाली लेख खुदवा कर जैन शासन को किस प्रकार कलंकित किया है ! ऐसे जाली लेख पहिले किसीने भी नही खुदवाये !

श्रीमान् जौहरीजी अपने लेख में लिखते हैं कि प्राचीन लेखों की तलाश में मुझे निम्न आठ लेख प्रकाशनार्थ प्राप्त हुये हैं।

श्रीमान जौहरीजी को प्राप्त हुये आठ शिलालेखों की नकल।

() कठगोला - मुर्शिदाबाद के श्री आदिनाथजी के मंदिर में से

(१) संवत् १९८१ माघशुदि ५ गुरौ प्राग्टवाट ज्ञातीथ वा। सं० दीपचंद भार्या दीपादे पु० सं० अबीरचन्द अमीचंद श्री ऋषभदेव जिनबिंबकारितं सुप्रतिष्ठितं खरतर गच्छे गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः।

(२) संवत् ११८१ माघसुदी ५ गुरौ प्राग्टवाट ज्ञाती वा। सं दीपचंद भार्या दीपादे पु० स० अबीरचंद अमीचंद श्रीपद्मप्रभजिनबिंबं कारितं सुप्रतिष्ठितं खरतरगच्छे गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः।

(३) संवत् ११८१ माघसुदी ५ गुरौ प्राग्वाट ज्ञाती वा । सं० दीपचन्द भार्या दीपादे पु० स० अवीरचन्द अमीचन्द श्रीपार्श्वनाथ जिनबिंबं कारितं सुप्रतिष्ठितं खरतरगच्छे गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः ।

() जैतारण में बाहिर के मंदिर में से:

(१) संवत् ११८१ माघसुद ५ गुरौ प्राग्टवट ज्ञातीय सं० दीपचन्द भार्या दिपादे पुत्र शा अबीरचन्द अमीचन्द श्री शान्तीनाथजी बिंब कारापित सुबीहीत खरतर गच्छे गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः ।

(२) संवत् ११६७ जेठब्द ४ गुरौ सं० रतुलाल भार्या रतनादे पुत्र शा कूनणमल श्रीचन्दाप्रभजिन कारापित सुवीहीत खरतरगच्छे गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः ।

(३) संवत् ११७१ माध शुद ५ गुरौ सं० हेमराज भार्या हेमादे पुत्र शा रूपचन्द रामचन्द श्रीपार्श्वनाथ बिंबं कारापितं खरतरगच्छे सुवीहीत गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः ।

(४) ११७४ वैशाख सुद २ सोम सं. श्रीचन्दाप्रभूजिनबींवं कारापितं खरतरगचछे, सुवीहीत गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः ।

(५) सा० ११७४ वैशाख सुद २ सोम....... सं० श्रीपार्श्वनाथबिंब कारापितं खरतरगच्छे, सुवीहीत गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः

जौहरी जी के उपरोक्त आठ शिलालेखों के विषय में किये हुए प्रश्न के उत्तर में श्रीमान् पन्यासजी ने जो उत्तर लिखा है वह भी यहाँ दर्ज कर दिया जाता है ।

"आठों ही लेख अप्रमाणिक हैं" ।

लेखक-श्रीमान् पंन्यासजीश्रीकल्याणविजयजी म० १

"श्री जैन सत्य प्रकाश" (वर्ष ५ अंक ७ पृष्ठ २५४-२५८) मे "विद्वानों से आवश्यक प्रश्न" इस हैडिंग के नीचे श्रीयुत् पन्नालालजी दूगड़ जौहरी ने कुछ ऐतिहासिक प्रश्नों की चर्चा करते हुये "खरतरगच्छ" शब्दोल्लेख वाले आठ शिला लेख दिये हैं और पूछा है- "इन आठों लेखों के विषय में विद्वानों से प्रश्न है कि वे इन्हें प्रामाणिक या अप्रामाणिक कैसें मानते हैं ?"

जौहरीजी के इस प्रश्न से सूचित होता है कि आपको भी इन लेखों की प्रामाणिकता के विषय में संदेह है, और होना ही चाहिये। जिसको थोड़ा भी इतिहास विषयक विचार होगा, इन लेखों को पढ़कर यही कहेगा कि ये लेख प्रामाणिक नहीं हो सकते।

आठ लेखों में से कठगोला - मुर्शिदाबाद के आदिनाथजी के मन्दिर के ३ और जैतारण के मन्दिर का १, एवं ४ लेख सं० ११८१ की साल के हैं जो सभी एकसे हैं। भेद मात्र जिननाम का ही है।

पांचवां लेख ११६७ के संवत् का है जब कि श्रीजिनदत्तसूरिजी आचार्यपदारूढ़ नहीं हुए थे।

छठा लेख सं० ११७१ का और सातवां और आठवां दोनों संवत् ११७४ के हैं।

ये लेख मूर्तियों पर खुदे हुये हैं या उनके सिहांसनों पर? और मूर्तियों पर तो पाषाण मूर्तियों पर हैं या धातु मूर्तियों पर? इन बातों का परिचय जौहरीजी के लेख से नहीं मिलता है।

यदि लेख पाषाणमूर्तियों पर खुदे हुये है तब तो यह मात्र लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि लेख जाली हैं। क्योंकि तब तक मूर्तियों के मसूरक (मूर्ति की वह संलग्न गद्दी जो मूर्ति के साथ उसी पत्थर के नीचले भाग से बनी हुई होती है) पर लेख खुदवाने का रिवाज नहीं चला था। यह रिवाज विक्रम की पंद्रहवीं सदी से प्रचलित हुआ है।

यदि लेख धातु की मूर्तियों पर अथवा पाषाण की मूर्तियों के सिंहासनों पर खुदे हुये हों तब भी इनके जाली होने में कुछ भी सन्देह नहीं है। हमारे इस निर्णय की सत्यता नीचे के विवरण से प्रमाणित होगी।

१- लेखों की भाषा और शैली स्वयं बतला रही है कि यह बीसवीं सदी के किसी अल्पज्ञ मनुष्य की कृति है।

२- 'शुदि, 'ब्द' आदि शब्द प्रयोग अर्वाचीनताद्योतक हैं। बारहवीं सदी में संस्कृत भाषा में ऐसे शब्द प्रयोग नहीं होते थे।

३- 'श्री शांतिनाथजी, श्री चन्दाप्रभूजी' आदि 'जीकारान्त' नाम आधुनिक

भाषा के प्रतीक हैं। बारहवीं सदी में तो क्या उसके सैंकड़ों वर्षो के बाद तक ऐसे शब्द प्रयोग नहीं होते थे।

४- 'दीपचन्द, अबीरचन्द, रतुलाल, कूनणमल, हेमराज, रूपचन्द आदि जो पुरुषों के नाम इन लेखों में प्रयुक्त हुये हैं वे प्रायः सभी वीसवीं सदी के नाम हैं। जिनदत्तसूरी के समय में इस प्रकार के नाम प्रचलित नहीं थे।'

५- 'दीपादे, रतनादे, हेमादे' आदि स्त्रियों के नाम भी आधुनिक हैं। लेख निर्दिष्ट समय में तथा उसके बाद सैकड़ों वर्षो तक ये नाम उक्त रूप में नहीं लिखे जाते थे।

६- 'खरतरगच्छे' इस सम्बोधन के बाद 'गणाधीश्वर' यह विशेषण प्रयोग खास सूचक है। हमने जिनदत्तसूरि के समय के और उसके बाद के अनेक शिलालेख और ग्रंथ प्रशस्तियां देखी हैं पर कहीं भी 'खरतरगच्छ शब्द का प्रयोग दृष्टिगचोर नहीं हुआ। जहां तक हमें याद है, चौदहवीं सदी के आरम्भ से शिलालेखों में 'खरतरगच्छ' शब्द प्रयुक्त होने लगा था। सुमतिगणि ने अपनी 'गणधर सार्धशतक टीका' जो जिनदत्तसूरिजी से लगभग सौ वर्ष पीछे की है - में श्री जिनेश्वरसूररिजी का विस्तृत चरित वर्णन किया है, जिसमें पाटण में चैत्यवासियों से शास्त्रार्थ करने और विजय पाने का सविस्तर वर्णन है, पर वहां भी खरतर शब्द का उल्लेख नहीं मिलता।'

उसी टीका ने सुमतिगणि ने श्री जिनदत्तसूरि का भी सविस्तार चरित्र दया है पर कहीं भी 'खरतरगच्छ' अथवा 'खरतर' शब्द का सूचन नहीं मिलता। इन बातों से हमने जो कुछ सोचा और समझा उसका सार यह है कि चौदहवीं सदी के पहिले के शिलालेखों और ग्रन्थों में 'गच्छ' शब्द के पूर्व में 'खरतर' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। पर उक्त आठों ही शिलालेखों में 'खरतरगच्छे गणाधीश्वर' इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

७ - प्रतिष्ठा सम्बन्धी सभी प्राचीन लेखों में 'प्रतिष्ठित' यह क्रियापद लिखा मिलता है, पर इन सब लेखों में 'सुप्रतिष्ठित' लिख कर लेखक ने इन लेखो वाली मूर्तियों को जिनदत्तसूरि प्रतिष्ठित सिद्ध करने का गर्भित प्रयत्न किया है।

हमारे उक्त संक्षिप्त विवेचन से ही जौहरीजी समझ सकेंगे की उक्त लेख

ऐतहासिक चीज़ नहीं, किन्तु किसी गच्छरागी मनुष्य का मूर्खतापूर्ण प्रयत्नमात्र है।

गुडाबालोतरा ता० २०-३-४०

पन्यासजी महाराज के ऊपर बतलाये हुये प्रमाण यों तो सब के सब प्रमाणिक ही हैं पर उसमें एक बात ऐसी है कि वह सर्व साधारण की समझ में आ सकती है और वह यह है कि जिनदत्तसूरिजी का नाम मुनि सोमचन्द्र था। जब वह वि० सं० ११६९ में जिनवल्लभसूरि के पट्टधर आचार्य हुये तब आपका नाम जिनदत्तसूरि हुआ। तब जैतारन की एक मूर्त्ति पर वि० सं० ११६७ के शिलालेख में जिनदत्तसूरि का नाम खुदा हुआ है। पाठक समझ सकते हैं कि जब मुनि सोमचन्द्र का नाम ही सं० १२६९ में जिनदत्तसूरि हुआ तब सं० ११६७ के शिलालेख में जिनदत्तसूरि का नाम होना यह तो बिल्कुल झूँठ एवं कल्पित ही हैं और इसमें किसी प्रकार का सन्देह ही नहीं रह जाता है। चोरी करने वाले चोरों को यह ध्यान थोड़े ही रहता है कि मेरे पीछे पागी मेरे पैरों की खोज करेगा तो मैं पकड़ा जाऊंगा। यह हाल जाली शिलालेख खुदाने वाले खरतरों का हुआ है।

पन्यासजी महाराज ने अपने लेख में स्पष्ट लिख दिया है कि न तो जिनेश्वरसूरि के साथ खरतर शब्द का प्रयोग हुआ है और न जिनदत्तसूरि के साथ। इतना ही क्यों पर आपश्री ने तो यहाँ तक भी लिख दिया है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के पूर्व के शिलालेखों एवं ग्रंथों में खरतर शब्द कहीं भी पाया नहीं जाता है।

यही कारण है कि पन्यासजी ने उन आठों लेखों को जाली एवं किसी गच्छारागी मनुष्य का मूर्खतापूर्ण प्रयत्नमात्र है लिखा है।

अजमेर की दादाबाड़ी के झूठे लेख को देख मुझे बड़ा ही दुःख हुआ था। पर जब श्रीतीर्थंकर भगवान की मूर्त्तियों पर झूठे लेख खुदवाये हुओं को पढ़ा तो मेरा दुःख कुछकम हो गया। कारण जब खरतर लोगों खरतर शब्द को प्राचीन साबित करने को श्रीतीर्थंकर देवों को मूर्तियों पर भी जूठे लेख खुदवा दिये तो अपने पूर्वजों की पद्धति अनुसार वीरपुत्रजी झूठा लेख लिखा दें इसमें आश्चर्य एवं दुःख करने की बात ही क्या है ? बस अब तो खरतरों के झूठ लिखने की हद ही हो गई है

क्योंकी जिन तीर्थंकरों की मूर्त्तियों पर के लेखों पर जनता का पूर्ण विश्वास था वहाँ भी इस प्रकार के जाली लेख लिखे जाने लग गये फिर तो विश्वास की बात ही कहाँ रही।

अधिक दुःख तो इस बात का है कि जाली लेखवाली आठ मूर्तियां तो उपलब्ध हुई है पर इनके अलावा भी कितनी मूर्तियों पर इस प्रकार के जालो लेख खुदवाये होंगे, इसके लिये कौन कह सकता है कि वे मूर्तियें कब और किस रुप में मिलेंगी ? शायद खरतरों ने इस प्रकार के जाली शिलालेख खुदाकर मूर्त्तियों को भूगर्भ में तो न रख दी हों ताकि भविष्य में वे प्राचीनसमझी जांय ? पर पाप का घड़ा तो पहिले ही फूट गया।

थोड़े समय पूर्व बाबू पर्णचन्द्रजी नाहर सम्पादित "जैन लेख संग्रह खण्ड तीसरा पृष्ठ १२ लेखांक २१२४" पर जैसलमेर के मन्दिर की एक मूर्ति पर का लेख 'कि जिसमें वि० सं० १४४७ में खरतरगच्छे जिनशेखरसूरि का नाम' छपा दिया था। वास्तव में न तो इस लेख वाली जैसलमेर में मूर्त्ति है और न वि० सं० १४४७ में कोई जिनशेखर नाम का आचार्य ही हुआ था और न उस समय खरतर शब्द की उत्पत्ति ही हुई थी फिर खरतर शब्द को प्राचीन बतलाने के लिये खरतरों ने एक प्रतिष्ठित विद्वान बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर को धोखा देकर जाली लेख छपा दिया पर अब मालूम हुआ है कि यह तो चाल इनके पूर्वजों से ही चली आई है।

- के० चौ०

भूषण शाह द्वारा लिखित-संपादित हिन्दी पुस्तक

		मूल्य
1.	जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा	100/-
2.	• जैनत्व जागरण	200/-
3.	• जागे रे जैन संघ	30/-
4.	पाकिस्तान में जैन मंदिर	100/-
5.	पल्लीवाल जैन इतिहास	100/-
6.	दिगंबर संप्रदाय : एक अध्ययन	100/-
7.	श्री महाकालिका कल्प एवं प्राचीन तीर्थ पावागढ	100/-
8.	अकबर प्रतिबोधक कौन ?	50/-
9.	• इतिहास गवाह है।	30/-
10.	तपागच्छ इतिहास	100/-
11.	• सांच को आंच नहीं	100/-
12.	आगम प्रश्नोत्तरी	20/-
13.	जगजयवंत जीरावाला	100/-
14.	द्रव्यपूजा एवं भावपूजा का समन्वय	50/-
15.	प्रभुवीर की श्रमण परंपरा	20/-
16.	इतिहास के आइने में आ. अभयदेवसूरिजी का गच्छ	100/-
17.	जिनमंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता	100/-
18.	जहाँ नमस्कार वहाँ चमत्कार	50/-
19.	• प्रतिमा पूजन रहस्य	300/-
20.	जैनत्व जागरण भाग-२	200/-
21.	जिनपूजा विधि एवं जिनभक्तों की गौरवगाथा	200/-
22.	• अनुपमंडल और हमारा संघ	100/-
23.	अकबर प्रतिबोधक कौन ? भाग-२	200/-
24.	महात्मा ईसा पर जैन धर्म का प्रभाव	50/-
25.	खरतरगच्छ सहस्त्राब्दी निर्णय	50/-
26.	प्राचीन जैन स्मारको का रहस्य	500/-
27.	जैन नगरी तारातंबोल : एक रहस्य	50/-

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित गुजराती पुस्तक

1.	મંત્ર સંસાર સારં	200/-
2.	● જંબૂ જિનાલય શુદ્ધિકરણ	30/-

3. ● જાગે રે જૈન સંઘ 20/-
4. ● ઘંટનાદ
5. ● શ્રુત રત્નાકર (પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. નું જીવન ચરિત્ર)
6. જૈનશાસનના વિચારણીય પ્રશ્નો 50/-

भूषण शाह द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक

1. ● Lights 300/-
1. ● History of Jainism 300/-

पू. अशोकजी सहजानंदजी द्वारा लिखित

1. ग्रहशांति दीपिका 500/-
2. सुखी और समृद्ध जीवन 400/-
3. वास्तुदोष : आध्यात्मिक उपचार 500/-
4. श्री सिद्ध मंत्र संग्रह 500/-
5. सिद्ध तंत्र संग्रह 500/-
6. सिद्ध यंत्र संग्रह 500/-
7. स्वरयोग : एक दिव्य साधना 350/-
8. योग साधना रहस्य 500/-
9. ध्यान विज्ञान 400/-
10. श्री पद्मावती - साधना और सिद्धि 300/-
11. श्री मणिभद्र साधना (घंटाकर्ण कल्प सहित) 300/-
12. जैन राजनीति विज्ञान 900/-
13. महा मृत्युंजय पूजा विधान (जैन पद्धति) 300/-
14. साधना कल्पद्रुम 400/-
15. तंत्रलोक की रहस्यमय सत्य कथाएँ 400/-

अन्य साहित्य

1. नवयुग निर्माता (पुनः प्रकाशन) (पू.आ. वल्लभसूरि म.सा.) 200/-
2. मूर्तिपूजा (गुजराती-खुबचंदजी पंडित) 50/-
3. मूर्ति मंडन - आ. लब्धि सू.म. 100/-
4. हमारे गुरुदेव (पू. जंबूविजयजी म.सा. का जीवन) 30/-
5. सफलता का रहस्य - सा. नंदीयशाश्रीजी म.सा. 20/-
6. ધરતી પર સ્વર્ગ સા. નંદીયશાશ્રીજી મ. (ગુજરાતી) 20/-
7. Heaven on Earth 20/-
8. कर्म विज्ञान 20/-

9. जडपूजा या गुणपूजा - एक स्पष्टीकरण (हजारीमलजी) 30/-
10. पुनर्जन्म - (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.) 30/-
11. क्या धर्ममें हिंसा दोषावह है ? 30/-
12. तत्त्व निश्चय (कुएँ की गुंजार पुस्तक की समीक्षा)
13. बत्तीस आगमों से मूर्तिसिद्धि (आशिष तालेडा) 50/-

प.पू. पंजाब देशोद्धारक आ. विजयानंद सू. म. (आत्मारामजी म.) का सन्मार्गदर्शक साहित्य

1. सम्यक्त्व शल्योद्धार 325/-
2. नवयुग निर्माता 200/-
3. जैन तत्त्वादर्श 300/-
4. जैन धर्म विषयक प्रश्नाोत्तर 200/-
5. जैन मत वृक्ष और पद्य साहित्य 200/-
6. जैन मत का स्वरूप 125/-
7. नवतत्त्व संग्रह 300/-
8. ईसाईमत समीक्षा 100/-
9. चिकागो प्रश्नोत्तर 100/-
10. अज्ञानतिमिर भास्कर
11. तत्त्व निर्णय प्रसाद

प.पू प्रशांतमूर्ति मु. मृगेन्द्रविजयजी म.सा. का साहित्य (गुजराती)

1. **શૃંગાર વૈરાગ્ય તંરગિણી** 50/-
2. **ભગવાન મહાવીર જીવનદર્શન** 50/-
3. **સંખ્યાત્મક કોશ** 100/-
4. हृदय - प्रदीप षट् त्रिंशिका (संस्कृत - गुजराती) 100/-
5. **પ્રસંગ પંચામૃત** 40/-
6. Stories From Jainism 100/-

ब्रोसर

1. दक्षीण भारत में जैन तीर्थ 10/-
2. महालक्ष्मी आरती मंत्रादी 10/-
3. पाकिस्तान में जैन मंदिर 10/-
4. महाकाली आरती - पच्चीसी 10/-
5. 68 तीर्थ भावयात्रा (सचित्र) 15/-

प.पू. मुनिराज ज्ञानसुंदरजी म.सा. द्वारा लिखित साहित्य

1.	मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास	100/-
2.	श्रीमान् लौंकाशाह	100/-
3.	हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है	30/-
4.	सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली	100/-
5.	क्या जैन धर्म में प्रभु दर्शन - पूजन की मान्यता थी ?	50/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा लिखित / संपादित साहित्य

1.	• समत्वयोग	100/-
2.	अनेकांतवाद	100/-
3.	• अनुपेहा	100/-
4.	• आणंदा	50/-
5.	सदयवत्स कथाकनम्	50/-
6.	संप्रतिनृप चरित्रम्	50/-
7.	दानः अमृतमयी परंपरा	310/-
8.	• हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप	100/-
9.	दोहा पाहुड	50/-
10.	बाराख्ख्र कवक	50/-
11.	• प्रभुवीर का अंतिम संदेशा	50/-
12.	• दोहाणुपेहा (संपादित)	50/-
13.	• तरंगवती	50/-
14.	**નંદાવર્તનું નંદનવન**	50/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा अनुवादित साहित्य

1.	संवेदन की सरगम	50/-
2.	• संवेदन की सुवास	50/-
3.	• संवेदन की झलक	50/-
4.	• संवेदन की मस्ती	50/-
5.	आत्मकथाएँ (संपादित)	50/-
6.	• शासन सम्राट (जीवन परिचय)	50/-
7.	• विद्युत सजीव या निर्जीव	50/-

Audio C.D.

1.	श्री जिनभक्ति शतकम्	150/-
2.	श्री जनभक्ति सुधा	75/-
3.	श्री अजितशान्ति स्तव वंदना	75/-
4.	स्पर्श	20/-

॥ जैन शासन - जैनागम नयकारा ॥
संपादित ग्रंथों की सूचिः (प्रकाशनाधीन)

1. जैन दर्शन का रहस्य
2. प्राचीन जैन तीर्थ - अंटाली
3. श्री सराक जैन इतिहास
4. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 1,4,5 (साथ में)
5. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 2,3 (साथ में)
6. जैन स्तोत्र संग्रह
7. अकबर प्रतिबोधक श्री हीरविजयसूरिजी महाराज
8. Reserch on Jainism
9. मिशन जैनत्व जागरण और मेरे विचार
10. जैन ग्रंथ - नयचक्रसार
11. प्राचीन जैन पूजा विधि - एक अध्ययन
12. जैनत्व जागरण की शौर्य कथाएँ
13. जैनागम अंश
14. जैन शासन का मुगल काल और मुगल फरमान
15. जैन योग और ध्यान
16. जैन स्मारको के प्राचीन अंश
17. **યુગ યુગમાં ભળજો જૈન શાસન (ગુજરાતી)**
18. मंत्र संसार सारं (भाग-2) (पुनः प्रकाशन)
19. मंत्र संसार सारं (भाग-3) (पुनः प्रकाशन)
20. मंत्र संसार सारं (भाग-4) (पुनः प्रकाशन)
21. मंत्र संसार सारं (भाग-5) (पुनः प्रकाशन)
22. अज्ञान जैन तीर्थ
23. तत्वार्थ प्रवेश
24. जैन दर्शन - अध्ययन एवं चिंतन
25. जैन मंदिर शुद्धिकरण
26. सूरिमंत्र कल्प संग्रह
27. अजमेर प्रांत के जैन मंदिर

28. जैनत्व जागरण-३
29. विविध तीर्थ कल्पों का अध्ययन
30. जैनदेवी महालक्ष्मी - मंत्रकल्प
31. जैन सम्राट संप्रति - एक अध्ययन
32. जैन आराधना विधि संग्रह
33. **જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-1, ગુજરાતી)**
34. **જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-2, ગુજરાતી)**
35. **જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-3, ગુજરાતી)**
36. **જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-4, ગુજરાતી)**
37. **જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-5, ગુજરાતી)**
38. सम्मेतशिखर महात्म्य सार
39. मेवाड देश में जैन धर्म
40. **જંબૂ શ્રુત એન્સાયક્લોપિડિયા (પૂ. ગુરૂદેવશ્રીને સમર્પિત શ્રુત પુષ્પ)**
41. जैन धर्म और स्वराज्य
42. **ચંદ્રોદય (પૂ.સા. ચંદ્રોદયાશ્રીજી મ.સા. નું જીવનકવન)**
43. जैन श्राविका शान्तला
44. **પૂ. બાપજી મહારાજ (સંઘસ્થવિર આ.ભ. સિદ્ધિસૂરિજી મ.સા. નું ચરિત્ર)**
45. **મારા ગુરૂદેવ (પૂ. જંબૂવિજયજી મ.સા. નું સંક્ષિપ્ત જીવનદર્શન)**
46. **જૈન દર્શન અને મારા વિચાર**
47. श्री भद्रबाहु संहिता - आ. भद्रबाहु स्वामी द्वारा निर्मित ज्ञान प्रकरण)
48. **પ્રશસ્તિ સંગ્રહ (પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. દ્વારા લખાયેલી પ્રશસ્તિ પ્રસ્તાવના સંગ્રહ)**
49. **ગુરૂમૂર્તિ - દેવીદેવતા મૂર્તિ અંગે વિચારણા.**

नोंध : सभी ग्रंथ जल्द ही प्रकाशित होगी

चल रहा विशिष्ट कार्य

जैन इतिहास

- आदीश्वर भगवान से वर्तमान तक

- ◆ **यह सूचि इ.सं. 2019 वि.सं. 2075 की है इसके पूर्व की सभी सूचि के अनुसार मूल्य खारीज कीए जाते है। अबसे इसी मूल्य के अनुसार पुस्तकें प्राप्त होगी।**
- ◆ **साधु-साध्वीजी भगवंतो एवं ज्ञानभंडारो को पुस्तक भेट दिये जाते है।**
- ◆ **सभी प्रकाशन का न्याय क्षेत्र अहमदाबाद है।**
- ◆ **कोरीयर से मंगवाने वाले "मिशन जैनत्व जागरण" अहमदाबाद के एड्रेस से ही मंगावे व फोन नं. 9601529534 पर ज्ञात कराये।**
- ◆ **● मार्क वाले पुस्तक उपलब्ध नहीं है।**